UNIVERSAL LIBRARY

OU_182142

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 J83B

Accession No. G 117

Author

Title लहरों तिनका

This book should be returned on or before the date last marked below.

बहता तिनका

बहता तिनका

कमल जोशी

नवयुग प्रकाशन, दिल्ली

प्रथम वार : १९५४

मूल्य

दो रुपये

प्रकाशक—नवयुग प्रकाशन, २८१ चावड़ी बाज़ार दिल्ली ।

मुद्रक—हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, २७ शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली ।

आवरण—श्री आनन्द महाजन

१

दरवाजे पर महरी के आकर खड़े होते ही लता मानो कारण समझ गयी, जैसे वह इस बात की प्रतीक्षा ही कर रही थी।

बीबी जी बुला रही हैं 'यही न ?' उसकी आवाज में व्यंग छिपा हुआ था। जीवन का व्यंग करने की, उपेक्षा करने का 'साहस' वह बटोरना चाहती है। डर की भावना को दूर करना चाहती है, फौरन उसका दमन करके।

'अरे, आपको मालूम है ?' महरी निश्चिन्त होकर चली गयी। लता ने दांतों से अपने होंठ दबाये। जलन के कारण आंखों में आंसू आ गये, उष्ण और तप्त अश्रु। अपनी सारी शक्ति लगाकर इन्हें वह रोकने की चेष्टा करती है।

बीबी जी—यानी उन लोगों की लेडी सुपरिनटेन्डेन्ट। वे क्यों बुला रही हैं, यह वह जानती है। क्या पूछेंगी, यह भी उससे छिपा हुआ नहीं है। कारण, इससे पहले भी दो वार यह अभिनय हो चुका है। इसकी तो मानो वह प्रतीक्षा ही कर रही थी—यहां आने के बाद से ही। लेकिन तो भी एक वर्ष कट ही गया।

यह अच्छा है कि इस समय कमरे में और कोई नहीं है। सुराही से पानी लेकर लता ने आंखों में छींटे मारे। अश्रुभरे नयनों से वहां नहीं जायेगी। आंखों का लाल रहना भी ठीक नहीं है। वह जानती है कि उसका कोई दोष नहीं है—इसलिए मस्तक ऊँचा कर ही जाना होगा।

अन्त में उसने अपनी चोटी ठीक की और मुंह पोंछकर कमरे से बाहर निकली। सीढ़ी से नीचे उतरकर लम्बा दालान है और उसके अन्त में ही सुपरिनटेन्डेन्ट साहिबा का दफ्तर है। अकेली ही होंगी, इसलिये बातें करने का काफी समय मिलेगा।

सुपरिनटेन्डेन्ट मिस गुप्ता डेस्क के सामने कुर्सी पर बैठी हुई बड़े ध्यान से रजिस्टर देख रही थीं। काफी स्थूलकाय—शायद किसी जमाने में अवश्य सुन्दरी रही होंगी। पर अब तो हथिनी जैसी ही लगती हैं। सिर के अधपके बाल बहुत तरीके से काढ़े गये हैं, गले में सोने की एक पतली चेन, हाथ में दो-दो चूड़ियाँ—और सबसे ज्यादा देखने योग्य है उनकी साड़ी। गहरे काले रंग की साड़ी के अलावा अन्य किसी रंग की वे पहनती ही नहीं। लता जब भी उन्हें देखती है, उसे हँसी आ जाता है। आज भी, इस दुःख में भी, उसके होठों पर हँसी की एक पतली-सी रेखा खेल गयी।

मिस गुप्ता को उसके आने की खबर हो गयी, पर बहुत देर तक बेखबर बनी रहीं। झुककर रजिस्टर पर ही नजरें गड़ाये रही। लेकिन कुछ देर बाद खुद ही बोलीं। उसकी ओर बिना देखे ही उन्होंने शुरू किया, 'अरे कौन, लता—आ गयीं ? बैठो, बैठो।···तुमसे कुछ बातें करनी हैं।'

लता यह सब जानती है। सब जगह एक सी ही भूमिका।

'हमारा लड़कियों का स्कूल है, लड़कियों का होस्टल है—हमारे सिर पर काफी बड़ी जिम्मेदारी है, यह तो तुम जानती ही हो। ऐसा-वैसा कोई इंस्टीट्यूशन होता तो इतने सोच-विचार की बात न थी।'

फिर कुछ क्षण शान्ति।

लता पत्थर की मूर्त्ति बनी बैठी है—उसकी आँखें भी मिस गुप्ता के रजिस्टर पर टिकी हुई हैं।

'मुझे दो-चार गुमनाम पत्र मिले हैं लता—तुम्हारे—तुम्हारे बारे में जिनमें गन्दी बातें लिखी हुई हैं। मैं तो विश्वास नहीं करती।' किसी

प्रकार एक साथ एक ही साँस में इतनी बातें कहकर मिस गुप्ता जैसे निश्चिन्त हुईं। अब लता ही बोली, 'मुझे क्या आज ही होस्टल छोड़कर चला जाना होगा ?' शान्त स्वाभाविक प्रश्न।

'नहीं, यानी—ऐं, क्या कहा तुमने ?' कुछ घबराये हुए भाव से मिस गुप्ता ने देखा, 'नहीं, यह क्यों ? मैं तो कह रही थी कि मुझे उन बातों पर विश्वास नहीं होता—' मन ही मन उन्होंने जैसे रिहर्सल कर लिया था। उनका ख्याल था कि अपना महत्त्व दिखाने का उन्हें सुअवसर मिलेगा। पर उसमें सहसा बाधा पड़ते देखकर उन्हें जैसे कुछ बुरा लगा, 'पर आज एक अभिभावक ने चिट्ठी भेजी है—लिखा है कि यदि हम लोग कोई स्टेप नहीं लेंगे तो वे अखबारों में छपायेंगे।···उनका यह कहना है कि अशर्फीलाल, जो तुम्हें यहाँ भर्ती करा गये हैं, वे तुम्हारे मामा नहीं हैं—'

'हाँ, यह ठीक है, कुछ रुपयों के लालच में ही उन्होंने अपना यह परिचय दिया था।'

'क्या कहा !' कुछ देर के लिए मिस गुप्ता की बोलती बन्द हो गयी, 'पर उन्होंने यह बात बतायी क्यों नहीं ?'

लता मानों और भी स्वाभाविक हो उठी, 'अगर बता ही देते तो फिर झूठ बोलने की जरूरत ही क्या थी, आप ही सोचिये।'

'पर झूठ बोलने की जरूरत क्या थी ?'

'बिना झूठ बोले क्या आप लोग स्कूल में भर्ती कर लेती ? सारी तफसील जानते हुए ?'

लता की आवाज में साहस है, व्यंग भी है।

'किन्तु—किन्तु यह तो ठीक नहीं है—'

'ठीक क्यों नहीं है ? नहीं तो फिर मैं क्या करती ? माँ और मौसी के पथ पर ही क्या मेरा भी जाना ठीक था, उचित था ! यदि कोई अच्छा बनना चाहे, सही रास्ते पर चलने की कोशिश करे, तो आप उसे नहीं सुधरने देंगी ? मैं और क्या कर सकती थी, जरा आप ही मुझे बताइये ?'

मिस गुप्ता से काले मुख पर भी जैसे कुछ कालिमा छा गयी कुछ देर तक वे स्तब्ध बैठी रहीं। फिर धीरे-धीरे क्षमा याचना के जैसे स्वर में बोलीं, 'सो सॉरी लता, एम रियली सॉरी। पर तुम ही कहो, क्या करूँ। पब्लिक के पैसे से हमारा इंस्टीट्यूशन चलता है, कमिटी है—इनको कैसे संभालूं। यदि किसी ने अखबारों में वाकई लिख दिया तो कैसा स्कैंडल होगा, तुम ही जरा सोचो।'

सिर झुकाये हुए लता ने जवाब दिया, 'मैं अभी चली जाती हूँ।'

'नहीं, नहीं।—मैं यह नहीं कहती। टेक योर टाइम। मेरा मतलब है कि कल या परसों, किसी दिन—माँ की तबियत बहुत खराब है या कुछ ऐसा ही बहाना बनाकर चली जाओ। फिर चुपचाप, ट्रान्सफर की अर्जी दे दो—सारा हंगामा आप ही मिट जायगा।'

लता तब तक खड़ी हो गयी थी। उसने कहा, 'म अभी चली जाऊँगी मिस गुप्ता। कल नौकर भेज दूँगी, आपका जो कुछ बकाया होगा वह चुकता कर देगा। उसी को मेरा सामान भी दे दें। माँ की बीमारी की एकाएक खबर पाकर मैं चली गयी हूँ, कृपया सबसे यही कह दीजियेगा। ट्रांसफर सर्टिफिकेट के लिए मैं कल स्कूल में अपना आदमी भेजूंगी—अब मैं आपको नुकसान नहीं पहुँचाना चाहती। अच्छा, नमस्ते!'

ऊपर जाकर लता ने सिर्फ अपना बैग उठा लिया। कोई महरी वगैरह उस समय वहाँ नहीं थी। किसी को भी कोई झूठी-सच्ची सफाई देने की जरूरत नहीं पड़ी। चुपचाप, बिना इधर-उधर देखे वह सड़क पर आ गयी। दरबान ने जरा विस्मित होकर उसकी ओर देखा। पर उसका गंभीर और उदास चेहरा देखकर कुछ पूछने का उसका साहस नहीं हुआ।

सड़क पर उसने इशारे से एक रिक्शा बुलायी। रिक्शा आते ही वह किसी प्रकार गिरती-पड़ती उसमें बैठ गयी, थकी-मांदी जैसी—

उसके आंसू कोई न देख सके—उस वक्त उसकी यही कोशिश थी।

लता जब घर पहुँची तब उसकी माँ सावित्री संध्या-पूजा करने के लिए ठाकुरजी के कमरे में घुसने ही वाली थीं। उस दिन शायद उनका एकादशी का व्रत था, कुछ देर पहले ही नहा कर चुकी थीं, रेशमी मुकटा पहने हुए, पीठ पर खुले हुए भीगे बाल, हाथ में पतली-पतली चूड़ियाँ। उपवास की एक स्निग्ध उदासीनता की छाप उनके शान्त और गम्भीर मुख को और भी श्रद्धेय करती थी।

उसकी यह माँ खराब है ? इस माँ की बेटी बनकर पैदा होना उसका अपराध है ?

असीम क्षोभ और क्रोध में वह बार-बार यह प्रश्न स्वयं से करती है।

उसको ऐसे बेवक्त आते देखकर ही सावित्री का मुँह सूख गया था। मानो उन्होंने भी कारण जान लिया। लता के मुँह की अस्वाभाविक शुष्कता ने जैसे उन्हें सारी घटना बता दी, समझने के लिए कुछ भी बाकी नहीं रहा। तो भी व्याकुलता के कारण मुँह से प्रश्न निकल ही पड़ा, 'तू इस वक्त यहाँ ? एकदम अचानक ? क्यों री, क्या हुआ ?'

अकस्मात माँ के प्रति असंतोष से लता का मन विषाक्त हो उठा। सब कुछ जानती हैं, सब समझती हैं,—तब फिर इतनी नासमझ क्यों बनती है ?

'और क्या होगा ? तुम जैसे नहीं जानतीं कि क्या होता है ? इससे पहले जो हुआ था, वही।'

कटुता से उसका हृदय भर गया है। उसे जैसे यह सब असह्य है। बार-बार यही एक-सा अपमानजनक अभिनय। क्यों ? क्यों ? उसने ऐसा क्या पाप किया है ? जो कुछ उसने अपने आप नहीं किया, जो अपराध उसके शरीर में कहीं भी नहीं है, उसका सारा दंड उसको ही क्यों बार-बार भोजना पड़ेगा ?

'क्यों, इस बार किसने कहा ?' रूँधे हुए स्वर में प्रश्न किया।

'यह जानने से कुछ फायदा होगा ?' चिढ़ी और जली-भुनी लता

ने कहा, 'या तुम कोई प्रतिकार कर सकोगी ? व्यर्थ के लिए बेमतलब की बातें बनाने से क्या फायदा ? जो संभव नहीं, जो होगा नहीं—उसकी कोशिश अब मत करो, मेरे ऊपर कृपा करो।...यह अपमान, यह तिरस्कार अब मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती।'

इसके बाद ही मानो ज्वालामुखी फूट पड़ा। हाथ-पैर पटकते हुए और मुँह विकृत कर वह चीख उठी, 'बौने को चाँद पकड़ने का यह शौक क्यों चर्राया है ? क्यूं ? क्यूं ? ..ऐसा दुःसाहस क्यों करती हो ? नही जानती कि तुम कौन हो ? तुम लोगों की क्या हस्ती है ?'

पर यह कहने के साथ-ही-साथ माँ के थके हुए, व्रत के कारण शुष्क और उदासीन चेहरे पर असीम वेदना की जो छाया नजर आयी, वह लता की नजरों से छिपी नही रही। अपना दुःख तो है ही और ऊपर से यह आघात भी जैसे लौटकर दुगुने जोर से उसके हृदय में ही लगा। अकस्मात ये अनेक और नाना प्रकार के आघात न सह सकने के कारण जैसे बाँध टूट गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। फिर प्रायः भागती हुई ऊपर के कमरे में जाकर धम्म से बिछौने पर गिर पड़ी। बहुत देर से, बड़ी मुश्किल से इस क्रन्दन को वह दबाये हुए है, पर अब और रोकना सम्भव नहीं है।

उदास भाव से सावित्री बहुत देर तक वहीं खड़ी रही। संध्या बीत गयी। नौकर कैलाश किसी काम से बाजार गया था, जब वह लौटा तो उसने रोशनी जलायी। वह बहुत पुराना नौकर है। इस घर की अनेक बातें जानता है। उसकी आँखों के सामने ही यहाँ अनेक घटनायें घटी हैं। इसलिए सावित्री को मूर्त्ति की तरह खड़े देखकर या लता को संध्या समय अंधकार में रोते हुए गौर कर भी उसने कोई प्रश्न नहीं किया। हर कमरे में खुद ही जाकर उसने बिजली जलायी। लेकिन जब उसने देखा कि रोशनी जल जाने के बाद भी सावित्री का ध्यान भंग नहीं हुआ तो उसने बहुत नम्र भाव से स्मरण करा दिया, 'माँ जी, शाम तो कब की बीत चुकी, ठाकुर जी की आरती नहीं करेंगी ?'

'ओ, अभी जाती हूँ।' सावित्री को जैसे होश आया। अनजाने ही जाने कब से उनकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी थी। जब होश हुआ तो उन्होंने फौरन ही अपने आँसू पोंछे। अपनी आवाज़ को सहज और स्वाभाविक करने की चेष्टा करते हुए बोलीं, 'कैलाश थोड़ी देर में चूल्हा जला देना, लल्ली आ गयी है, उसके लिए खाना बनाना होगा।'

फिर तेजी से पूजा के कमरे में घुसकर उन्होंने फौरन दरवाजा बन्द कर लिया। भगवान के सामने वे रोयेंगी, जी भरकर रोयेंगी—उन्हें पूर्ण अवकाश चाहिये।

पूजा के आसन पर बैठकर उन्हें रोना नहीं आया। मन में एक विचित्र प्रकार का क्षोभ और रोष आ गया। उनका यह रोष भगवान पर ही है, उनके इष्ट-देवता जो सिंहासन पर बैठे हँस रहे हैं, उनसे ही शिकायत है। इनके सामने आँसू बहाने में भी जैसे लज्जा आती है।

उस पाप का यह प्रायश्चित। वे भी यह जानती हैं। पर वह पाप क्या आज भी दूर नहीं हुआ? इतना कठोर प्रायश्चित करने पर भी?

और जो कुछ भी पाप है, वह तो उन्होंने किया है। उनके पाप का फल यह सुकुमार बच्ची, फूल की तरह अमलिन, उनकी पवित्र बेटी—वह इतना अपमान, लांछना और तिरस्कार क्यों सहे? यह तुम्हारा कैसा न्याय?

उन्होंने ही ऐसा कौन बड़ा पाप किया था?

जिस घर और वातावरण में उनका जन्म हुआ, वहीं उनका परिचय हुआ और उस परिचय के कारण ही जब वे बड़ी हुईं तो उन्हें यथा निर्दिष्ट पथ पर आगे ढकेल दिया गया—अपनी अवश्यम्भावी परिणति की ओर। अच्छा-बुरा, सत्-असत् और पाप-पुण्य, यह सब कुछ समझने के पहले ही सिर्फ तेरह वर्ष की उम्र में ही उन्हें अपने तन को सौंप देना पड़ा था—एक अधेड़ मांस-लोलुप बैरिस्टर की लालसा और वासनाओं की पूर्त्ति के लिये।......

इसके बाद, हाँ, और भी बड़ी होकर, सब कुछ जानते-बूझते हुए भी दूसरों की भोग वस्तु बनना पड़ा है, दूसरों के तन तथा मन को संतुष्ट करना पड़ा है, इसमें संदेह नहीं। लेकिन क्या उस वक्त भी उनकी विवेक-बुद्धि जाग्रत होने की उम्र थी ?

जिस दिन अच्छा-बुरा समझने लायक उम्र हुई, उस दिन से उन्होंने कोई पाप किया है, उन्हें यह याद नहीं पड़ता। इसके बहुत पहले ही जब वे सिर्फ सतरह वर्ष की थीं, तब एक दिन उनके यहाँ एक सौम्य, सुशील और सुन्दर युवक आया।—उसकी सेवा करते हुए ही उनके जीवन के सुदीर्घ बत्तीस बर्ष बीते हैं। अपने जीवन-इतिहास के इस परिच्छेद के लिए सावित्री कतई लज्जित नहीं है। किसी भी पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन की अपेक्षा उनका जीवन कम पवित्र नहीं था। भगवान साक्षी है—उस दीर्घ समय में और उसके बाद भी आज तक उन्होंने किसी की ओर लालसा या इच्छा की दृष्टि से नहीं देखा है, और किसी की उपासना करना तो दूर रहा, उन्होंने कामना तक नहीं की है।

वह ? उसके सम्बन्ध में सावित्री नहीं कह सकती। वह कलाकार था, नाट्यकार, कवि और धनी बाप का बेटा। यह ठीक है कि उसने विवाह नहीं किया, लेकिन उसने सबके सामने और हमेशा सावित्री को अपनी पत्नी स्वीकार किया है। अन्य कहीं भी उसकी कुछ प्रेमलीला थी कि नहीं, यह वह नहीं जानतीं। सम्भव है कि थी, पर उन्हें ऐसा कभी सन्देह नहीं हुआ। पर ऐसा तो बहुत से विवाहित पतियों के साथ भी होता है, यानी इधर-उधर थोड़ी-बहुत प्रेमलीला की बीमारी। लेकिन उससे उनकी पत्नियाँ तो पतिता नहीं होतीं—बल्कि उनके गौरव, उनकी महिमा की ही बड़ाई होती है।

अपने मित्रों में सावित्री का 'मेरी पत्नी' कहकर परिचय देते हुए उन्होंने अजीत को अनेक बार सुना था। यह सुनकर उनका मन खुशी से नाच उठा है। कृतज्ञता, आनन्द और प्रेम से सावित्री ने स्वयं को अजीत के चरणों पर समर्पित कर दिया है। उसने पति की पूजा की

है। उस दिन इन सब बातों का एक बार भी ख्याल नहीं हुआ। नहीं तो सिविल मैरिज—सिर्फ कहने भर की देर थी। इसकी भी जरूरत हो सकती है, उन्होने तब यह सोचा ही नहीं था।...अजीत ने भी इसकी कोई जरूरत नहीं समझी थी—वह कवि और कलाकार था, दिन-रात काल्पनिक लोक में ही रहता था। इस दुनिया की वास्तविकता और यथार्थता को उसने नहीं पहचाना, और जानना-पहचानना चाहा भी नहीं।

जिसके लिए प्रयोजन हो सकता था, वह रतन, सावित्री की प्रथम सन्तान—वह बहुत दिन पहले चला गया था। मृत्यु नहीं हुई, मृत्यु होने पर शायद सावित्री खुश ही होतीं। घरछोड़कर चलागया, भाग गया। वह उसी लम्पट और दुराचारी बैरिस्टर का लड़का था। रतन में अपने बाप जैसी समस्त पशु-प्रवृत्तियां थीं। बाप कहने को बैरिस्टर तो भी था, पर बेटे को कुछ भी बनने का सुयोग नहीं मिला। इसमें कोई शक नहीं कि उसको सभ्य इन्सान बनाने लायक बुद्धि भी उस वक्त सावित्री में नहीं थी—और इच्छा भी नहीं। उन लोगों के लड़के जैसे बड़े होते हैं, रतन भी उसी तरह बड़ा होने लगा। दूसरे की सन्तान आँखों के सामने रहने पर कहीं अजीत के मन में कोई प्रतिक्रिया न हो, इस डर से सावित्री उसे हमेशा अजीत की नजरों से दूर रखती थी। अजीत को बहुत दिनों तक उसके बारे में कुछ पता ही नहीं था। जवानी के आवेग में वह सब कुछ भूल चुका था, सावित्री के सौंदर्य-सागर में वह तैर रहा था। प्रेमिका की सन्तान के कल्याण की फिक्र करने की उम्र भी उसकी नहीं थी।

यही वजह थी कि सोलह वर्ष की उम्र में ही रतन सब प्रकार की बुराइयों और अपराधों में सिद्धहस्त हो गया था। मुहल्ले में मुसलमानों की बस्ती थी, उसका सारा समय वहीं कटता था। फिर जब उसके भविष्य के सम्बन्ध में चिन्तित होकर सावित्री ने ज्योंही कुछ कड़ा रुख अख्तियार किया त्योंही बन्धन टूट गया। घर छोड़कर रतन एक दिन चला गया। ऐसे ही खाली हाथ नहीं, बल्कि माँ के चार-पाँच हजार रुपये के जेवर लेकर भाग गया—और तब से आज तक लौटकर

नहीं आया।

सावित्री इसे अपना सौभाग्य मानती हैं। शायद वह अभी जीवित है। शायद इस बीच चोरी के अपराध में कई बार जेल की सजा भी काट चुका हो। लेकिन जो एक बार गया तो फिर लौटकर नहीं आया—अपनी नीचता और हीनता से उनका मकान अपवित्र नहीं किया। इसलिए उसके प्रति वे कृतज्ञ हैं।···

लता उनकी बड़ी उम्र की औलाद है। अब और सन्तान हो सकती है, जब उन्हें इसकी कल्पना तक नहीं थी, तब ही हठात् वह उनकी गोद में आ गयी। सुन्दर बेटी—माँ जैसा रूप और बाप की प्रसन्नता और उदारता लेकर वह आयी। सावित्री और अजीत दोनों का ही उसके प्रति बहुत प्रेम था। बेहद लाड़-प्यार में उसका पालन-पोषण हुआ।

पर उसकी बदकिस्मती, नहीं तो बचपन में ही उसके बाप की मौत क्यों होती?

लता जब सिर्फ नौ साल की थी, तब एकाएक एक दिन अजीत की मृत्यु हो गयी—सिर्फ तीन दिन के बुखार में। इस मकान में ही उसकी मृत्यु हुई थी। सावित्री के नाम से यह मकान खरीदकर अजीत ने अपनी रूचि और पसन्द से इसे सजाया था। जिन्दगी के आखिरी दस वर्षों में वह अपने घर नहीं गया। उसके महल जैसे विशाल मकान में उसके नाते-रिश्तेदार रहते थे। उसने यह कई बार कहा था कि वह मकान लता के नाम लिख देगा। पर यह विचार कार्य-रूप में परिणत होने के पहले ही उसकी आँखें सदा के लिए बंद हो गयीं।

लेकिन मरते वक्त भी आखिरी शब्द लता के सम्बन्ध में थे। उस वक्त उसके साँस फूल रहे थे, उसी हालत में हाँफते-हाँफते अजीत ने कहा था, 'सावित्री, शायद मेरा अन्तिम समय आ गया है। लेकिन चाहे जैसे भी हो लल्ली को पढ़ा-लिखाकर मनुष्य बनाना। वह मेरी लड़की है, यह कहकर अपना परिचय दे सके।'

बस, ये ही उसके आखिरी शब्द थे, और इसके बाद ही हृदय की

गति रुक गयी थी।

लेकिन सावित्री उनकी आखिरी इच्छा का बहुत दिनों तक पालन नहीं कर सकी थी। शोक में वह दीन-दुनिया सबको भूल गयीं, पागल होगयीं। कितना पैसा नष्ट किया,अपना कितना नुकसानकिया और साथ में लड़की का भी, यह वे नहीं जानतीं। उन्होंने सच्चे दिल से अजीत से प्रेम किया था, अपने हृदय का समस्त प्यार उसके चरणों पर न्योछावर कर दिया था। शायद ऐसा प्रेम कभी किसी ने किसी से नहीं किया होगा। इसलिए वियोग का यह धक्का सम्भालने में काफी वक्त लगा।

उस वक्त इस कैलाश ने ही बचाया था।

नाना उपलक्ष्य में, कारण-अकारण उनके पति ने उन्हें अनेक जेवरात उपहार में दिये थे। हाँ, पति ने ही दिये थे। शोक में पागल हो उन्होंने अनेक जेवरात सड़क पर फेंक दिये थे। कितने कीमती विलायती शीशे उन्होंने तोड-फोड़ दिये थे। यह हाल देखकर अन्त में कैलाश ने ही कीमती चीजें उठाकर बड़े कमरे में बंद कर दी थीं। इसीलिए आज भी उन्हें खाने को मिल रहा है।...

लेकिन उसी वक्त फौरन लता की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी थी। अपनी बहिन यमुना के भरोसे मकान छोड़कर वे तीर्थयात्रा करने चली गयी थीं। कैलाश भी उनके साथ गया था। भारत के सारे तीर्थ-स्थानों का भ्रमण कर जब वे दो साल बाद लौटीं तो देखा कि यमुना ने लता की शिक्षा का कोई प्रबन्ध ही नहीं किया है। बल्कि इससे पहले लता ने जो कुछ सीखा था, वह भी भूल गयी है। यमुना ने बिना उसकी आज्ञा के ही मकान में दो-चार किरायेदार और रख लिये हैं। उन सब वारंगनाओं और उनके यहाँ आने वालों ने लता को अध:पतन के रास्ते पर चलाने की पूरी तैयारी और व्यवस्था कर ली है। अभी से उसने होंठ और गाल रंगना सीख लिया है, पान भी खूब खाती है और जैसी भाषा व जिस तरीके से बातें करती है—वह और कुछ भी हो लेकिन अजीत प्रसाद की लड़की के उपयुक्त नहीं है।

उस दिन सावित्री की आँखों के सामने अंधेरा छा गया था।

अपने पति की अन्तिम इच्छा वे कभी पूरी कर सकेंगी, इसमें उन्हें सन्देह था। बड़ी मुश्किल, परेशानी और लड़ाई-झगड़े के बाद यमुना को उन्होंने अपने मकान से निकाला। साथ-ही-साथ किरायेदारों को भी भगाकर उन्होंने मकान को पवित्र किया। अब उन्होंने लड़की को सभ्य, सुशील और भला बनाने की तपस्या प्रारम्भ की।···लता में अपने बाप के बहुत से गुण थे। इसलिए काले धब्बों को धीरे-धीरे पोंछ देना सम्भव हुआ।

फिर से पढ़ाई-लिखाई शुरू हुई। इसलिये मैट्रिक तक पहुँचते-पहुँचते लता की उम्र काफी हो गयी। बड़ी तलाश के बाद एक वृद्ध मास्टर मिले थे, अशर्फीलाल। अपने जीवित काल में अजीत ने कई बार इन्हें आर्थिक सहायता दी थी—इस मकान में ही। उन्होंने दस रुपये मासिक पर लता को पढ़ाना शुरू किया। पर वे खुद ही कौन बहुत ज्यादा शिक्षित थे। इसलिये दो-तीन साल लगातार पढ़ाने के बाद देखा गया कि लता आगे नहीं बढ़ पायी है, तब दूसरे मास्टर की तलाश हुई। एक के बाद एक आया—प्रायः छः-छः महीने दोनों ने पढाया। एक वृद्ध थे, उससे पढ़ने के लिए कहकर वे स्वयं कुर्सी पर बैठे-बैठे सोते रहते। दूसरे न वृद्ध थे और न जवान ही—षोडषी लता को देखकर वे ललचा उठे।

इसमें बहुत दिक्कत थी। ठीक से पढ़ाई नहीं होती। तब अशर्फीलाल ने ही सलाह दी, ऐसे पढ़ाई नहीं होगी, इसे स्कूल भेजो।

स्कूल में भर्ती कराने में जो सब दिक्कतें हैं, कुछ रुपया मिलने पर वे सारी बाधा और मुसीबतों को दूर कर देंगे। पर यहाँ से हर रोज स्कूल आना-जाना नहीं हो सकता, क्योंकि स्कूल की बस आते ही सारा भेद खुल जायगा। और अगर कैलाश रोज पहुँचाये-लाये तो भी बात फैलने का डर है। मुहल्ले का कोई भी व्यक्ति सावित्री तथा लता का शरीफ ढंग से रहना अच्छी नज़रों से नहीं देखता—वे लोग स्कूल में

जाकर नमक-मिर्च लगाकर खबर दे देंगे। इन सब बातों को मद्देनज़र रखते हुए उसे होस्टल में दाखिल करा देना ही बेहतर होगा। प्रायः साठ रुपया मासिक खर्च होगा, तो हो, एकमात्र लड़की के भविष्य के लिए सावित्री सब कुछ करने को तैयार है। इसके अलावा जेवर और काफी रुपया नष्ट होने के बाद भी जो कुछ बचा है, उससे होस्टल के खर्च के लिए चिन्ता नहीं करनी होगी। अतः एक स्कूल में भर्ती करा दिया गया। लता पाँचवी क्लास में दाखिल हुई। इतने दिनों बाद उसने अपना परिचय जाना है और उसका अवश्यमभावी दायित्व। कारण, बाहरी दुनिया से एकदम अलग रहते हुए भी, दो वर्ष यमुना के साहचर्य और अजीत की खरीदी हुई तीन-चार अलमारी भरी हुई किताबों ने उसे बहुत कुछ ज्ञान दे दिया था। और फिर अब उसकी उम्र भी तो बढ़ रही है।

अतः वह सावधान ही थी। झूठ का अभेद्य व्यूह उसने अपने चारों ओर रच रखा था। लेकिन तो भी साल बीतते न बीतते एक दिन असली बात खुल ही गयी। भले मुहल्लों के जो सब शरीफ नौजवान लता के सौंदर्य की ज्वाला में अपने पतंग मन को भस्म कर सकते थे, वे ही अपनी व्यर्थता की विद्वेषाग्नि में उसको दहन करने के लिए साग्रह आगे बढ़े।

एक शब्द में, उसे उस स्कूल से विदा लेनी पड़ी। लेकिन हाँ, सारी बातें सुनकर स्कूल वालों ने शराफत ही की थी। होस्टल छोड़कर चले जाने का उसे अवसर दे दिया। इसके बाद फिर एक दूसरे स्कूल में— लेकिन वहाँ सिर्फ तीन महीने। उसके बाद यह स्कूल। इस स्कूल में खर्च बहुत अधिक था, पर यहाँ भी ज्यादा दिन रहना नहीं हो सका। सिर्फ लता पर ही लोगों की नजर नहीं थी, बल्कि उस मुहल्ले के अनेक अधेड़ व्यक्तियों की नज़र सावित्री पर भी थी। सावित्री और उसका काल्पनिक कुबेर का खजाना। सावित्री इस तरह अपना दरवाजा सदा के लिए बन्द कर देगी, यह उनलोगों ने कभी नहीं सोचा था। जो कुछ जमा-पूँजी

उसके पास है, उससे बहुत ज्यादा उन लोगों ने सुन रखा था। और भी दुश्मन हैं—उसके अपने नाते-रिश्तेदार। उन्हें सावित्री का यह शरीफ बनना पसन्द नहीं था। कहाँ से और कौन आक्रमण करता है—कौन जानता है, कौन बता सकता है।...

सावित्री की आँखों के सामने अतीत और वर्तमान का यह इतिहास छायाचित्र की तरह घूम गया। जो वेदना, व्यर्थता और हृदय के जिन घावों को वे भूलने बैठी थीं, वे मानो फिर से हरे हो गये। अश्रुओं से उनका मुकटा भीग गया। अब वे नहीं सह सकती। उन्हें कहीं भी हवा नहीं मिलती, जैसे दम घुटा जा रहा हो। हृदय विदारक आर्त्तनाद, पर धीमे स्वर में 'हे भगवान' कहते हुए मूर्ति के चरणों में उन्होंने माथा टेक दिया और फिर पत्थर की मूर्ति के सामने ही अपना माथा ठोंकने लगी।

२

इसके बाद दो दिन एक अस्वाभाविक मौन में कटे। अब क्या होगा और क्या करना उचित है, यह प्रश्न सैकड़ों बार होठोंपर आया पर अपना सारा साहस बटोरकर भी सावित्री नही पूछ सकीं। एक असम्भव संकोच, जाने कैसे लज्जा और अपमान की आशंका उनकी जबान रोक देती। लता भी स्वयं कुछ नही कहती। वही प्रथम दिन की संध्या के बाद नहीं रोयी, यह भी मालूम नहीं होता कि बहुत ज्यादा दुःखी है। सिर्फ ऐसा लगता है जैसे किसी अखंड मौन ने उसे चारों ओर से घेर रखा है। स्वाभाविक रूप से वह खाती-पीती है, एक-दो मामूली बातें भी करती है—अधिकांशतः कैलाश के मामूली प्रश्नों का मामूली जवाब। लेकिन बस इतना ही। अपने भावी कार्यक्रम के बारे में एकदम निर्विकार और उदासीन है। अन्त में तीसरे दिन समस्त संकोच को दूर करते हुए उन्होंने प्रश्न किया, 'हाँ री अब क्या होगा ?'

'किसका क्या होगा ?'

निर्विकार स्वर—किन्तु होठों पर मानो व्यंग की रेखा चमक उठी।

सिर झुकाये हुए सावित्री ने कहा, 'तेरा—तेरी पढ़ाई का ?'

'नहीं होगी।'

'नही होगी ?' सावित्री की आवाज़ में मानो एक निराशा और क्रन्दन फूट पड़ा।

'पढ़ाई कैसे हो सकती है माँ ?···अब तक तीन बार निकाली जा चुकी हूँ, तो भी तुम नहीं चेततीं ? और कितनी बार तुम देखना चाहती हो ? और यदि तुम चाहो भी तो मैं बार-बार अपमानित होने के लिए तैयार नहीं हूँ। मेरी भ. सहन शक्ति की एक सीमा है।···और इससे फायदा भी क्या ? ऐसे भी कहीं पढ़ाई होती है कि आज तीन महीने यहाँ तो फिर दो महीने वहाँ—इस तरह पढ़ाई नहीं हो सकती। और यहाँ होस्टल वाले स्कूल ही भला कितने हैं ?'

'यहाँ से कहीं बाहर जाना चाहती हो ?' कुछ ठहर कर मानो डरते हुए माँ ने प्रश्न किया।

'नहीं। अब मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। डाक तो सब जगह ही जाती है।'

प्रायः पाँच मिनट दोनों चुप रहीं। लता की गोद में एक किताब खुली हुई रखी थी, पढ भले ही न रही हो पर उसकी दृष्टि उस पर ही थी। और सावित्री जमीन पर आँखें गड़ाये पत्थर की मूर्ति बनी बैठी थी।

'तो अब तू क्या करेगी ?' किसी प्रकार उन्होंने यह प्रश्न किया।

'क्या करूँगी ? यह मैंने नहीं सोचा—जो होना होगा वही होगा। अब मैं और कुछ नहीं सोचूंगी। इधर कई दिनों से बिलकुल कुछ न सोचने की ही मैं कोशिश कर रही हूँ।'

सावित्री बहुत देर तक वैसे ही बैठी रही, फिर चुपचाप उठकर चली गयी। इधर कई दिनों से लगातार रोने की वजह से शायद उनके आँसू सूख गये हैं।

पर उसी दिन रात को बगल में लेटते हुए सावित्री ने फिर बात छेड़ी, 'बेटी लता, मेरी एक बात मानेगी ?' उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए, जैसे बचपन में फेरती थीं, कहा।

'क्या माँ ?' लता की आवाज भी मुलायम थी। वाकई, इसमें माँ का क्या दोष ? लेकिन इधर कई दिनों से उन्हें जो मानसिक क्लेश

और दुःसह यंत्रणा हुई है, वह क्या उससे छिपी हुई है ?

'देख, जब तू पैदा हुई थी तब ही मैंने सोच लिया था कि तेरा क्या होगा। जिस पथ पर हमें चलना पड़ा है उस पथ पर तो अपने जीते जी मैं तुझे कभी भी नहीं जाने दूँगी—इससे पहले मैं अपने हाथों से खुद ही तेरा गला घोंट दूँगी। मैंने उसी वक्त यह सब सोचा था और मन ही मन यह निश्चय किया था कि तुझे भगवान के चरणों में सौंप दूँगी। उनकी चीज है, जो इच्छा हो सो करें। उनकी पूजा करके, सेवा करके तू अपना समय वितायेगी। किसी तरह जीवन कट ही जायगा। यह बात मैंने उनसे भी कही थी, उन्होंने मेरे इस विचार को हँसी में उड़ा दिया। कहा था, तुम्हारे भी क्या विचार हैं—तुम इस तरह एक मानव-जीवन नष्ट करना चाहती हो ? जैसी उसकी अपनी कोई इच्छा, आशा, आकांक्षा नहीं होगी, क्यों ?···नहीं, यह ठीक नहीं होगा। उसे मैं शिक्षित बनाऊँगा, उच्च शिक्षा के लिए विलायत भेजूँगा। मैं तो चाहता हूँ कि वह खूब पढ़े-लिखे। और फिर यदि कोई योग्य व अच्छा व्यक्ति मिले, अगर उसकी इच्छा हो तो वह चाहे जिससे शादी कर ले। उनका अन्तिम आदेश भी यही था—इसीलिए मैंने अपना विचार कभी जाहिर नहीं किया, उनकी इच्छानुसार ही मैंने काम करने की कोशिश की थी।'

भावावेग में जैसे उनकी आवाज रुँध गयी। कुछ देर चुप रह कर बोलीं, 'भगवान के चरणों में चढ़ायी हुई चीज लौटाकर मनुष्य के भोग्य लायक बना रही थी, शायद इसीलिए भगवान ने मेरी यह कोशिश बेकार कर दी। क्या मालूम !'

'तुम क्या मुझे संन्यासिनी बनाना चाहती हो, माँ ?' कुछ देर बाद लता ने प्रश्न किया।

'यह तेरी इच्छा बेटी। अभी तो मैं यह चाहती हूँ कि कोई अच्छे-से गुरु मिल जायँ जो तुझे दीक्षा दे दें। तुझे वे रास्ता बता दें और उसी रास्ते पर तू चले—इसके बाद तेरी जो इच्छा हो सो करना।

आशा है कि वे तुझे रास्ता दिखा देंगे और खुद ही एक दिन तुझे अपने पास खींच लेंगे।'

भक्ति और विश्वास, भावावेग और निराशा तथा व्यर्थता से सावित्री का स्वर काँप गया।

बहुत, बहुत देर तक लता चुप रही। सावित्री को ऐसा लगा जैसे एक युग बीत गया हो। उन्होंने आशा के कितने महल बनाये थे, कल्पना के पट पर उन्होंने कितने चित्र अंकित किये थे। पर आज कुछ भी नहीं रहा—सब-कुछ मिट गया। महल की एक-एक मंजिल ढह गयी, चारों ओर बिखर गयी। लता को भी शायद इस वेदना की अनुभूति हो रही थी।

काफी देर बाद उसने बहुत धीमे स्वर में कहा,'तुम जो ठीक समझो वही करो माँ ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता, मैं कुछ नहीं जानती।'

सावित्री क्या इस उत्तर से प्रसन्न हुईं ? वे क्या यह आत्म-समर्पण ही चाहती थीं? यह भी समझ में नहीं आया। पास-पास लेटे हुए दोनों माँ-बेटी ने जागते हुए काफी रात काट दी—पर फिर किसी ने कोई बात नहीं की।

दूसरे दिन सुबह उठते ही लता ने अपना इरादा पक्का कर लिया। सारी आशा टूट गयी तो टूट जाने दो— उसके पिता जो चाहते थे, उसके मन ने इन कई वर्षों के अनुभव से जिस सुख और भविष्य की आशा की थी, जब उनके पूरे होने की सम्भावना ही नहीं तब माँ को निराश करने से ही क्या फायदा। और ठीक ही तो है, उन्हें भी तो एक अवलम्बन चाहिये।

सन्यास ! उसमें ही क्या बुराई है ?

सुबह चाय पीते-पीते उसने माँ से पूछा, 'किससे दीक्षा लेनी होगी, माँ ? तुम्हारे कोई गुरुदेव हैं ?'

'नहीं री, होते तो फिर रोना ही क्या था। प्राय: तीन साल पहले

वे समाधिस्थ हो गये ।'

'वे संन्यासी नहीं थे, क्यों ?'

'हाँ, जटाधारी नहीं—ऐसे ही ।'

'किस सम्प्रदाय के ?'

'इतना तो मुझे मालूम नहीं बेटी । लेकिन सिर मुंडा हुआ और गेरुआ वस्त्रधारी साधु थे । अवश्य उनका कोई सम्प्रदाय नहीं था ।··· उन्हीं के एक गुरु भाई ने आश्रम को बहुत बढ़ा लिया है, मन्दिर-वंदिर भी बनवाया है—काम काफी फैला लिया है । कहे तो उन्हें ही बुलाऊँ ।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा माँ । मैं कुछ नहीं जानती ।'

खबर मिलते ही वह गुरु भाई, नन्दलाल गोस्वामी महाराज आकर उपस्थित हो गये । प्रायः चालीस वर्ष के समर्थ और बलिष्ठ पुरुष, बहुत जोर से ठहाका मारकर हँसते हैं, हँसी-मजाक खूब करते हैं, किसी बात का कुछ ख्याल नहीं करते, खाने-पीने के बेहद शौकीन—अर्थात् गेरुआ वस्त्र और मुंडा हुआ सिर के अलावा उनमें सन्यास का और कोई लक्षण नहीं है । लेकिन उन्हें देख कर भक्ति भले ही न हो पर लता को वे अच्छे लगे । बात-बात में ज्ञान या योग की बातें नहीं करते, इससे ही तो वह खुश है । इसके अलावा उनकी हँसी में कुछ ऐसा जादू है कि वह दूसरे को आकर्षित कर लेती है ।

'क्यों सावित्री बहन—बोलो क्या हुक्म है । ऐ लड़की, जरा जल्दी चाय ला ।' आते ही उन्होंने हुक्म चलाना शुरू कर दिया । एक कुर्सी खींच कर पूजा वाले कमरे के सामने बैठ गये ।

लता ने आकर बहुत भक्ति-भाव से प्रणाम किया । 'अरे यह वही लाली है सावित्री बहन ?···बहुत बड़ी हो गयी हो जी ! बैठो-बैठो, भागो मत ।'

लता का हाथ पकड़ कर उन्होंने उसे अपने पास बैठा लिया । सिर और पीठ पर सस्नेह हाथ फेरने लगे । बच्चों की तरह प्यार करने पर

लता को कुछ शर्म आती है। उनका हाथ धीरे से हटाते हुए उसने कहा, 'ठहरिये, पहले आपके लिए चाय ले आऊँ।'

हाँ, हाँ ! जाओ, जल्दी जाओ। चाय के साथ कुछ गरम-गरम नाश्ता भी लाओ। न हो तो हलुआ ही बना लाओ।'

लता के चले जाने के बाद सावित्री की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए बोले, 'क्या बात है, बताओ तो ?'

सावित्री ने एक-एक कर सारा किस्सा सुना दिया। इतने दिनों के समस्त अपमान का इतिहास भी।

सुनते-सुनते गोस्वामी जी का मुख गम्भीर हो गया, 'अरे, तुमने इतने दिनों से क्यों नहीं बताया? बड़े बदमाश लोग हैं, लाली का अनिष्ट करने पर तुले हुए हैं।'

इतने में लता उनके लिए चाय और नाश्ता ले आई। कैलाश ने सामने एक छोटा-सा स्टूल रख दिया। उस पर चाय का प्याला और नाश्ते की तश्तरी रख कर लता वहीं उनके चरणों के पास बैठ गई।

चाय पीते-पीते गोस्वामी जी ने उससे कहा, 'तुम्हारी माँ ने मुझे क्यों बुलाया है, यह जानती हो लता ?'

लता ने सिर हिलाते हुए बताया कि उसे मालूम है।

'तो फिर तुम्हारी क्या राय है ?'

'मेरी सम्मति तो है ही। माँ ने मुझसे पहले ही पूछ लिया था।' लता ने धीरे से कहा।

'हूँ।' करके गोस्वामी जी थोड़ी देर तक चुपचाप चाय पीते रहे और साथ-ही-साथ बहुत गौर से लता को देख भी रहे थे।

कुछ देर बाद प्याला नीचे रखकर सीधे बैठ गये। बहुत शान्त और गम्भीर आवाज में धीरे-धीरे बोले, 'देखो, तुमने बहुत-सी किताबें पढ़ी हैं। स्कूल की साधारण छात्रा से ज्यादा अक्लमन्द हो। उम्र भी कोई बहुत कम नहीं है। दीक्षा लेना आसान नहीं है, कोई खेल नहीं है।

विशेषतः इस कच्ची उम्र में, अभी सारा जीवन तुम्हारे सामने पड़ा है। दीक्षा लेने का अर्थ है : फिर से सम्पूर्णतः नया जीवन शुरू करना, एक नये राज्य में प्रवेश करना। मान लो यदि मै तुम्हारा गुरु बनूं, तो तुम्हें अपने हृदय से मेरी श्रद्धा करनी होगी—कभी भी किसी कारण अश्रद्धा या उपेक्षा करोगी तो उससे तुम्हारा नुकसान होगा, यानी आध्यात्मिक जीवन की क्षति होगी। गुरु के रूप में क्या तुम मेरी श्रद्धा कर सकोगी ? जरा अच्छी तरह सोच-विचार लो—'

लता को ये बातें सुनने में बहुत अच्छी लगीं। गुरुओं के बारे में उसने जो एक धारणा बना रखी थी, उससे ये भिन्न हैं।

गोस्वामी जी ने फिर कहा, 'यदि बाध्य होकर, लाचारी के कारण दीक्षा लेना चाहती हो तो कोई जरूरत नहीं। यहाँ मैं किसी-न-किसी स्कूल में तुम्हे भर्ती करा दूँगा, उन्हें तुम्हारा असली और सच्चा परिचय ही दूँगा। हाँ, एक होस्टल वालों से भी मेरी अच्छी मेल-मुलाकात है, वहाँ तुम्हारे रहने की व्यवस्था भी कर सकता हूँ।...वहाँ की लेडी सुपरिनटेन्डेन्ट मेरी शिष्या है—किसी भी प्रकार का कोई हंगामा नहीं होगा। तुम खूब अच्छी तरह सोच लो, किस रास्ते पर तुम्हें चलना है। तुम जो कहो, जैसा चाहो, वैसा हो सकता है। सब पहलुओं पर खूब अच्छी तरह और ठंडे दिमाग से सोच-विचार कर काम करो।'

शीत की स्पन्दनहीन स्तब्धता में क्या दक्षिणी हवा का यह एक झोंका आया ? श्रावण की अविराम वर्षा के बाद क्या मन में सादे मेघ और सुनहरी धूप होगी ?

लता की आँखें चमक उठीं—आशा और आकांक्षा से उसने अपनी माँ की ओर उत्सुकता से देखा। सावित्री भी उसकी ओर उदग्रीव होकर देख रही हैं। उनकी आँखों में संदेह है, विनती भी है। उनके सुन्दर ललाट की प्रत्येक रेखा में आशा और आशंका का द्वन्द्व स्पष्ट है।

पिता मर चुके हैं। अतः अब माँ की इच्छा का मूल्य ही ज्यादा है। उनका यह असहाय उतकण्ठ भाव बहुत करुणोत्पादक है।

लता ने सिर नीचा कर कहा, 'आप दीक्षा ही दीजिये।'

'ऊँ हूँ—इतनी जल्दी नहीं। आज मैं तुम्हारा उत्तर नहीं चाहता। मैं यहाँ कल तक हूँ—आज सारी रात सोचो, कल सुबह फिर विचार करो—इसके बाद जवाब देना। कोई प्रभाव या किसी की भी प्रसन्नता या अप्रसन्नता का ख्याल करने की तुम्हें कोई जरूरत नहीं लता।'

कुछ क्षण चुप रहकर फिर बोले, 'जब तुम सोचो तो हर पहलू से विचार करना। दीक्षा की वजह से तुम्हारे ऊपर किसी भी तरह का दबाव नही होगा। खान-पान, वेश-भूषा, घूमना-फिरना—में किसी भी विषय में और किसी भी रूप में तुम्हारी स्वतंत्रता का अपहरण नहीं करना चाहता। ये सब ढकोसले मैं स्वयं भी नहीं मानता। दीक्षा लोगी, इसमें डरने की कोई बात नहीं।'

गोस्वामी महाराज लता को और भी अच्छे लगे। ये बहुत अच्छे हैं—सीधे-सादे और स्पष्टवादी।

इस प्रसंग को बदलते हुए गोस्वामी जी ने दूसरी बातें शुरू कीं, अपने आश्रम के सम्बन्ध में। वे और आश्रम के प्रतिष्ठाता श्री रामानन्द महाराज, दोनों ही पहले सेवा समिति में थे। पर उनसे हमारी बनी नहीं। गोस्वामी जी ने कहा, 'वे लोग जब देखो तब केवल काम-काम की ही रट लगाते रहते थे। अरे, क्या हम सिर्फ काम करने के लिए ही सन्यासी हुए है। अगर काम ही करना था तो कोई अच्छी-सी नौकरी-चाकरी या व्यापार ही न करते। आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करने के लिए ही तो यह गेरुआ वस्त्र धारण किया है—नहीं तो हमें किस बात की कमी थी ? क्या हमारे घर में खाने को नहीं था जो मेहनत करके खाने के लिए वहाँ गये हैं ? श्री राधे, श्री राधे।'

उन्होंने यहाँ से प्रायः डेढ़-दो सौ मील दूर एक सूनसान, शान्त और छोटे से गाँव में अपना आश्रम खोला है। लता ने प्रश्न किया, 'गाँव में क्यों खोला ? साधना और भजन के लिए तो किसी निर्जन स्थान में आश्रम बनाना चाहिये था कोई ऐसी जगह नहीं मिली ?'

'नहीं, यह बात नहीं। एकदम निर्जनता से भी तो काम नहीं चल सकता। इतने सस्ते में और इतनी जमीन कहाँ मिलती। एक भक्त ने दो हजार रुपये दिये थे उसी रुपयेके सहारे रामानन्द महाराज जमीन की तलाश में निकले तो वहाँ एक साथ पचास बीघा जमीन मिल गयी—सिर्फ पाँच सौ रुपये में। शुरू में वहाँ एक छोटी-सी कुटिया बनाकर बैठ गये। लेकिन आज कुछ नक्शा ही दूसरा है.आश्रमके पास आज साढ़े चारसौ बीघा जमीन है। सिर्फ केला के ही डेढ़-सौ पेड़ हैं। आम, कटहल, अमरूद और जामुन——है क्या नहीं ? थोड़ा बहुत गेहूँ भी होता है। खर्च भी तो पूरा है। एक-एक त्योहार के समय आस-पास के गाँव से जो सैकड़ों व्यक्ति आते हैं——उन सबको प्रसाद भी तो बाँटा जाता है। एक-एक दिन में बीस-पच्चीस मन गेहूँ उठ जाता है।

'अच्छा ? तब तो प्रसाद का पहाड़ लगता होगा।'

'हाँ, पहाड़ तो लगता ही है। बिना इसके पूरा भी कैसे पड़ सकता है। गाँव वाले समझते हैं कि भगवान के मंदिर में प्रसाद तो अवश्य मिलेगा ही इसीलिये यह सब प्रबंध करना पड़ा है, और मंदिर भी बहुत शानदार व भव्य बनवाया है।'

'प्रसाद और चरणामृत बाँटे बिना भी तो पूजा हो सकती है।'

'अरे भई, हो क्यों नहीं सकती। लेकिन बिना यह सब किये आश्रम कैसे चल सकता है। उनसे हम अपना कितना काम लेते हैं। जमीन क्या ऐसे ही अपने आप बढ़ गयी है, या अतिथि-गृह वगैरह ऐसे ही बन जाते।'

'पर आपको इन सबकी जरूरत ही क्या है। आप तो एकांत में साधना करना चाहते थे, उसके लिए इतने हंगामे की क्या जरूरत ?··· यह सब भी तो खासा झंझट ही है न। काम करने की वजह से ही तो आप लोगों ने सेवा-समिति छोड़ी, यहाँ भी तो वही काम है—'

'हाँ——यह तो ठीक है,' गोस्वामी जी मानो कुछ चौंके, 'लेकिन देखो, यह दूसरे ढंग का काम है। हमें जो दिक्कतें हुई थीं, जो कमी पड़ी थीं–

हमारे बाद आने वालों को उन सब दिक्कतों का सामना न करना पड़े, इसीलिए यह सब करना पड़ा है। निश्चिन्त आहार और आश्रय मिलने पर कितने अधिक व्यक्तियों को अपनी आत्मा की उन्नति करने का मौका मिलेगा—'

'फिर भी, इतनी सम्पत्ति की देखभाल करना भी तो एक सांसारिक झंझट ही है।'

'हाँ, सो तो है ही। देखो, जो आते हैं उन्हें उपदेश-वुपदेश तो मिलते ही हैं, भागवत कथा सुनते हैं, इससे उनका कुछ लाभ तो होता ही है।'

इसके बाद उन्होंने और भी दूसरी-दूसरी बातें कीं, इधर-उधर की। आश्रम की जमीन में जो खेतीबारी करते हैं उन लोगों की नाना प्रकार की हास्यप्रद मूर्खताएँ, उनके कुसंस्कार। उनके आश्रम में किन-किन प्रान्तों के शिष्य हैं। इस गप-शप में ही संध्या हो गई। सावित्री पूजा करने चली गईं, सिर्फ लता ही अकेली श्रोता है। लेकिन इस बात से गोस्वामी जी का उत्साह कम नहीं हुआ। गप्प करते-करते बीच-बीच में वे जोर से हँस पड़ते हैं और लता की पीठ थपथपा देते हैं।

३

लता सारी रात सोचती रही। बहुत गंभीरतापूर्वक उसने सोचा। लेकिन उसका हृदय माँ को दुःख पहुँचाने के लिए राजी नहीं हुआ...इसके अलावा दीक्षा या साधन के सम्बन्ध में उसे स्वयं भी कोई आपत्ति नहीं थी। बुराई भी क्या है, यदि नये पथ का सन्धान मिले तो अच्छा ही है।

अतः महीने भर में ही उसे दीक्षा दे दी गयी। गोस्वामी जी ने दीक्षा देकर दो दिन तक नाना उपदेश दिये और सावित्री से आश्रम के लिए दो सौ रुपया दक्षिणा लेकर चले गये।

लता ने सच्चे हृदय से ही दीक्षा ग्रहण की।

वह मन से मंत्र का जाप करती, एकाग्र चित्त से ध्यान करना चाहती है। नियमानुसार संध्या वन्दनादि नित्य-कर्म करती है। मन-ही-मन हर समय इष्ट-देव की पूजा करती रहती है। बिना पूजा-पाठ किये जल तक नहीं पीती। कठिन व्रत और कठोर साधना में लीन है। पढ़ने की इच्छा होते ही धर्म-ग्रंथों का पाठ करती है, उनका मतलब समझने की कोशिश करती है।

इस तरह तीन महीने कटे। सावित्री खुश हुई—कुछ निश्चिन्त भी हुई। प्रतिदिन अपनी पूजा के समय भगवान से विनती करती है। उसको बार-बार उनके चरणों में सौंप देती है—'उसे तुम अपनी शरण में लो, हे भगवान्—विकसित पद्म तुम्हारी पूजा में ही चढ़े।' मन-ही-

मन प्रसन्न होती हुईं वे गौर करती है कि कठोर और कष्टकर व्रत एवं साधना के फलस्वरूप लता कुछ दुबली भी हो गयी है। लेकिन उसके मुख पर तप की एक अपूर्व ज्योति नजर आती है। उसकी दृष्टि भी अन्तर्मुखी और गंभीर हो गयी है। सावित्री खुश होकर परमात्मा को बार-बार धन्यवाद देती हैं।

पर ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं लता निश्चिन्त तो होती ही नहीं, बल्कि प्रसन्न भी नहीं हो पाती। उसके हृदय के किसी एक कोने में सन्देह व सशय का कोई अदृश्य बीज था, वही धीरे-धीरे अंकुरित हो रहा है। वह क्या जरा भी ईश्वर के निकट पहुंच सकी है ? वास्तव में वह क्या आगे बढ़ना चाहती है ?

स्कूल की याद आती है—सुनीति, चित्रा, गीता, ललिता—उसे अपनी सहेलियों की भी याद आती है। मन मानो चंचल हो उठता है। स्कूल से पास होकर वह कालेज में जाती—वहाँ वह और भी उन्नति करती, एक दिन शायद पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिए विलायत जाना भी सम्भव हो जाता।

एक शब्द में बाहरी विशाल संसार उसको बुलाता है, पुकारता है। जीवन के नाना रस, अनेक प्रकार की सम्भावनाओं का आकर्षण उसके हृदय-समुद्र में ज्वार लाते हैं। उसका चित्त डाँवाडोल हो उठता है।

तब क्या यह सारा जप-तप और साधना व्यर्थ ही हो रही है ? इस तपस्या में उसका मन किसी भी दिन नहीं लगेगा ? उसे कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होगी ? गुरुदेव ने कहा था, 'धीरे-धीरे अपने आप ही मन लग जायगा—देखना इसमें इतना आनन्द और सुख मिलेगा कि फिर मन लगाने की चेष्टा नहीं करनी होगी।'

लेकिन कहाँ, मन तो नहीं लगता। उसे जरा भी आनन्द, शान्ति या सुख नहीं मिलता—जिस सुख की खोज में और भी आगे बढ़ा जा सकता था, जिस आनन्द के लिए और भी कठिन तपस्या की जा सकती थी।

तो भी लता न हार नहीं मानी। और भी कठिन, कष्टकर तपस्या व साधना के लिए वह तैयार हुई। हालांकि गुरुदेव कह गये हैं, 'खाने के बारे में कुछ मनाही नहीं है, जो इच्छा हो, जो रुचि हो वही खाना—' तो भी मन ही मन उसने इस ओर भी संयम करने का संकल्प किया। उसने फलाहार शुरू किया। तृतीय प्रहर में सिर्फ फलाहार और रात को थोड़ा-सा दूध। माँ ने चिन्तित होकर कहा, 'अरे लल्ली, ऐसी कठोर तपस्या करेगी तो तेरा शरीर कितने दिन चलेगा? यह सब क्या शुरू किया है?'

लता ने हँसी में बात उड़ा दी, 'इससे कुछ नुकसान नहीं होगा माँ—बल्कि तुम देखना मेरा स्वास्थ्य अच्छा ही होगा—'

इसी तरह और एक महीना बीतने पर एकाएक एक दिन नन्दलाल गोस्वामी महाराज आये, अपनी शिष्या की खबर लेने।

'क्यों री, तुमने अपनी यह क्या शक्ल बना रखी है? क्या बात है?'

सावित्री ने शिकायत की, 'खाना-पीना तो इसने एकदम छोड़ रखा है। एक वक्त सिर्फ फलाहार और रात को सिर्फ पाव भर दूध। और कुछ नहीं खाती। बहुत समझाया पर सुनती ही नहीं।'

गोस्वामीजी ने सिर हिलाते हुए कहा, 'ना-ना, शरीर के साथ इतनी ज्यादती करना तो ठीक नहीं है, लता। अभी से यह सब करने की क्या जरूरत है?'

उनके मुँह की ओर कुछ देर तक स्थिर दृष्टि से देखने के बाद लता ने कहा, 'साधना और तपस्या के इस पथ को मैं भली-भाँति देख लेना चाहती हूँ। कहीं भी कोई जरा सी त्रुटि न रहने पाये।'

'इसके बाद?'

'इसके बाद की बात बाद में ही सोची जायगी।' और यह कहकर लता पूजा के कमरे में चली गयी।

गोस्वामी जी वहाँ दो दिन रहे और उस बीच उन्होंने लता को

सैकड़ों उपदेश दिये। साधना में अपने मन को कैसे एकाग्र करना पड़ता है, विक्षिप्त मन को सांसारिक पात्रों से हटाकर किस प्रकार अपने इष्ट-देव के चरणों में समर्पित करना चाहिये—इसी के अनेक उपाय बता गये।

एकाग्र चित्त से लता चेष्टा करती है। गुरुदेव का प्रत्येक उपदेश निष्ठा के साथ पालन करती है, उनके बताये हुए पथ पर अग्रसर होने के लिए प्राणपण से चेष्टा करती है।

एक महीना इस तरह कट गया। कुल मिलाकर चार महीने बीत गये।

एकाएक एक दिन लता ने अपनी माँ से कहा, 'अब नहीं होती माँ।'

सावित्री के हृदय के जैसे टुकड़े-टुकड़े हो गये।

'क्या नहीं होता लल्ली ?'

'तुम्हारा यह पूजा-पाठ, भजन, साधना और तपस्या—इसके सहारे नहीं रहा जाता।'

'क्या कहती हो ! इतनी जल्दी ही तुमने कैसे समझ लिया कि इसके सहारे नहीं रहा जा सकता। जरा और कोशिश करो, धीरज रखो—तब तो गहराई में पहुँचोगी, समझीं।' मुँह से तो उन्होंने यह जरूर कहा, लेकिन बेटी के मुख पर दृढ़ प्रतिज्ञा की जो रेखा नजर आ रही है, उससे वे भली-भाँति परिचित हे। मन ही मन समझ गयीं कि साधना सफल नहीं हुई—उनका स्वप्न पूरा नहीं हुआ।

लता भी तो यही कहती है, 'मैंने बहुत कोशिश की माँ। इसके सहारे मैं जीवन नहीं बिता सकती। अनेक चेष्टाओं के बावजूद भी अपने हृदय में मुझे भगवान का स्पर्श नहीं मिलता, इच्छा करने पर भी उनके प्रति वह आकर्षण नहीं होता जिसके भरोसे कुछ दिन और चेष्टा करके देखती। यह सब मुझे बहुत जबरदस्त आत्म-प्रवंचना लगती है।'

फिर जरा हँसते हुए बोली, 'भगवान बुद्ध की तरह तपस्या को व्यर्थ जानकर कई दिनों से सिर्फ इसी चिन्ता में हूं—अवश्य ही बोधि वृक्ष के

नीचे नहीं, कंक्रीट की इस छत के नीचे ही।...उनकी तरह ही चिन्ता के पश्चात मुझे भी पथ दिखाई पड़ा है—लेकिन वह भी वैराग्य का पथ नहीं है। मैं फिर स्कूल में भर्ती होऊँगी।'

'किन्तु—' बाधा देते हुए सावित्री कुछ कहने वाली थी, लेकिन लता ने उन्हें बात पूरी नहीं करने दी। बोली, 'अब किन्तु-विन्तु का कुछ काम नहीं माँ। मैंने गोस्वामी जी को चिट्ठी लिख दी है—वे कल-परसों तक शायद जरूर आ जायेंगे।'

और दूसरे दिन श्री नन्दलाल गोस्वामी महाराज वाकई आगये। सारी बातें सुनने के बाद सावित्री को उन्होंने सान्त्वना दी, 'तुम दुःखी न होवो, बहना। मुझे तो खुशी है कि उसने आत्म-प्रवंचना नहीं की। अपनी ओर से तो उसने पूरी चेष्टा की थी, कुछ भी नहीं उठा रखा था। कुछ भी कहो, अभी है तो बच्चा ही—इसीलिए उसने सत्य को सहज रूप में स्वीकार कर लिया। तुम या मैं अथवा और कोई बड़ा आदमी होता तो ढकोसलेबाजी ही करता रहता, स्वयं को धोखा देता और दुनिया को भी।···उससे तो यह बहुत अच्छा है। बीज तो उसके मन में रह ही गया है, ठीक समय पर अपने आप ही अंकुरित हो जायगा। इसमें इतने घबड़ाने की क्या बात है। श्री राधे, श्री राधे!'

लता को अपने साथ ले जाकर वे एक बड़े स्कूल में भर्ती करा आये। लड़कियों के होस्टल में उसके रहने का प्रबन्ध भी कर दिया। इस बार उन्होंने ऐसी व्यवस्था की ताकि पुराने नाटक की पुनरावृत्ति न हो। यह तय हुआ कि दो-एक दिन में ही लता अपने सामान सहित होस्टल में चली जायगी।

सारे दिन सावित्री अचल बैठी रहीं। वे सोच रही थीं—क्या उनकी भी यह इच्छा नहीं थी कि उनके पति की अन्तिम अभिलाषा पूर्ण हो? बाधाओंको ईश्वरेच्छा मानकर इतने दिनों तक मनको भुलावा दिया था।

पर अब जब ईश्वरेच्छा का बहाना ही नहीं रहा, तब पति की अन्तिम अभिलाषा की पूर्ति ही प्रबल हो उठी।

लल्ली को मनुष्य बनाना होगा, उसके बाप की इच्छानुसार। लेकिन इसके लिए उन्हें भी कठोर आत्मत्याग करना होगा।

शाम को लता के सामने ही गोस्वामी जी से हाथ जोड़ते हुए बोलीं, 'महाराज सिर्फ लल्ली का प्रबन्ध करने से ही काम नहीं चलेगा—मेरी भी कुछ व्यवस्था कर दीजिये।'

'क्या ?—तुम्हारी क्या व्यवस्था करनी है जी ?'

'मैं अब यहाँ न रहूँगी।'

'नही रहोगी ? तो कहाँ जाओगी ?'

'जहाँ भी जगह मिलेगी। किसी तीर्थ स्थान में मेरे रहने का प्रबन्ध कर दीजिये। मकान के दो कमरे बन्द कर जाऊँगी, एक में सारा सामान और दूसरा इसलिए कि छुट्टियों में यदि लता यहाँ आकर रहना चाहे तो रह सके। और बाकी सारा मकान किराये पर उठा दूँगी। किराये की आमदनी से ही लता का खर्च चल जायगा।'

माँ के गले से लिपटते हुए लता बोली, 'तुम क्या मुझसे नाराज होकर जा रही हो माँ।'

'नहीं पगली, यह बात नही। मेरे यहाँ रहने से तेरा मंगल नहीं होगा। तुझे अपने पैरों पर आप खड़ा होना होगा। तेरे नये परिचय में मेरा कोई स्पर्श, कोई छाया तक न रहे! इसीलिए मैं अपने को यहाँ से हटा रही हूँ। यहाँ रहने पर मेरे और तेरे सम्बन्ध का पता चल ही जायगा। अब लल्ली,तू मेरी ओर न देख। तेरा पथ सामने की ओर है—तू उस ओर ही देख। तेरे पिता मुझे जिस पथ पर चलाना चाहते थे उस पथ का ही जब तुमने अपनाया है, तब ऐसी ही कोशिश कर कि तू उनकी आशा को, इच्छा को पूरी कर सके। यह देखकर मुझे भी तो सन्तोष ही होगा लल्ली! मुझे रोककर क्या होगा।'

'तुम्हारी माँ बिल्कुल ठीक कह रही हैं। मेरे ख्याल में उनका यह

विचार सब तरह से अच्छा है।'

गोस्वामी जी ने चिट्ठी-पत्री लिखकर वृन्दावन के एक मठ में सावित्री के रहने का प्रबन्ध करा दिया। यह निश्चय हुआ कि कैलाश भी साथ जायगा। किरायेदार भी खूब मौके से मिल गये। सारी व्यवस्था ठीक कर प्रायः पन्द्रह दिन बाद सावित्री वृन्दावन चली गयीं।

जाते वक्त उन्होंने लता से मुलाकात भी नहीं की। 'अब और माया-ममता बढ़ाने से क्या फायदा। मुझे जाते हुए देखकर वह रो पड़ेगी। मेरा भी तो यही हाल है, इससे बिना मिले चले जाना ही अच्छा है। आप उससे कह दीजियेगा महाराज कि चाहे जहाँ भी रहूँ, पता नहीं कि मेरे आशीर्वाद का भी कुछ मूल्य है या नही, लेकिन मैं उसे हर रोज ही आशीर्वाद दूँगी --भगवान उसकी रक्षा करेंगे !'

४

इसके बाद दो-तीन वर्ष एक ही प्रकार से कट गये। लता मन लगाकर पढ़ती है। पर सावित्री उसके बाद एक बार भी नहीं मिली, और न लड़की को ही मिलने दिया।

कभी-कभी लता बहुत बेचैन हो जाती। जबसे उसने होश सँभाला तब से उसके जीवन में माँ के अलावा और कोई नहीं था। आज भी नहीं है। उसके साथ जो लड़कियाँ पढ़ती हैं, उनमें से अधिकांश ही उम्र में उससे काफी छोटी हैं। अतः उनसे मित्रता नहीं होती। होस्टल में कुछ लड़कियाँ हम उम्र हैं, पर उनमें से कोई फर्स्ट इयर में है तो कोई सैकंड इयर में। इस व्यवधान की वजह से वे भी लता से बहुत ज्यादा मेल-जोल नहीं बढ़ा पातीं। इसके अलावा ज्यादातर लड़कियाँ ही कुछ चंचल और हल्की प्रकृति की हैं। किसी भी वस्तु या विषय पर वे गम्भीरता-पूर्वक नहीं सोच पातीं, सोचने की शक्ति भी उनमें नहीं है। लेकिन जीवन के नाना उतार-चढावों में से गुजरने के कारण लता की प्रकृति गम्भीर हो गई है। वह कोई गम्भीर समस्या चाहती है। वह ऐसी मित्रता चाहती है जो सुख-दुःख में अटल रहेगी, जिस मित्रता में बातें करने की जरूरत नहीं—हृदय की बात जहाँ हृदय में अपने आप ही पहुँच जाती है। पर इन लोगों में से ऐसी आशा करना मूर्खता है।

छुट्टी के दिन सबसे ज्यादा खराब लगते हैं। गर्मी और दिवाली की छुट्टियाँ जैसे बिताये नहीं बीततीं, किसी भी तरह। अन्य छात्राएँ भी

विस्मित होती हैं। दशहरा-दिवाली की छुट्टियों में नौकर-चाकर तक नहीं रहते। होस्टल की संचालिका शान्ती बहन की महरी खाना बनाती, लता भी उन्हीं के साथ खाती। मकान में उसके लिये एक कमरा था अवश्य, पर वहाँ जाकर रहने की उसकी इच्छा नहीं होती थी। उस मकानमें माँ नहीं है—और वह वहाँ रहेगी, यह वह सोच भी नहीं सकती थी। और फिर जब माँ ही नहीं है, तब फिर उस मुहल्ले की स्मृति को जगाने के लिए जाने से क्या लाभ। उस मकान के किरायेदारों के बीच वह अजीब लगेगी।

मैट्रिक के इम्तिहान से प्रायः छः महीने पहले, दशहरा की छुट्टियो मे माँ की अनुमति आयी, 'लता, सीने में कभी-कभी बहुत दर्द होता है। पता नहीं, क्या मर्ज है। शायद अब मे ज्यादा दिनों की मेहमान नहीं हूँ—तुम एक बार आओ, तुम्हे देखने की इच्छा है। तुम्हे देखने के लिए जी तड़प रहा है। आओ, एक बार मिल जाओ।'

लता का मुँह सूख गया, हृदय की धड़कन तेज हो गयी। माँ को यदि कुछ हो गया ? बाप रे, कल्पना भी नही की जा सकती। वृन्दावन पहुँच कर उसने देखा, वाकई माँ की हालत खराब है। स्वास्थ्य इतना गिर गया है कि पहचाना भी नहीं जाना। मेघ जैसे सुन्दर केश जाने कैसे हो गये है। उजला रंग काला पड़ गया है। आजकल हर रोज ही एक बार दर्द उठता है। जब दर्द होता है तो ऐसा लगता है जैसे अब प्राण निकल ही जायेंगे। लता ने अपनी आँखों से यह देखा। जिस दिन पहुँची थी, उसी दिन रात को दर्द उठा। प्रायः ढाई घंटे तक माँ छटपटाती रहीं। उफ, ऐसी तकलीफ होती है कि देखा भी नही जाता। ऐसा लगता है जैसे उनका दम घुटा जा रहा हो। ढाई घटे बाद दर्द कम हुआ। सारी रात सावित्री बेहोश जैसी पड़ी रही। इस यन्त्रणा मे वे अकेली ही पड़ी रहती हैं। देखभाल करने वाला भी कोई नही है। कैलाश भी नही है। यहाँ आने के दो महीने बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। किसी डाक्टर या वैद्य को नही दिखाया है। लता ने दूसरे दिन

जबरदस्ती करके डाक्टर बुलाया। डाक्टर ने कहा, 'पेट में गैस होती है, शायद उसकी वजह से ही ऐसा होता है। बहुत नियम से रहने की जरूरत है।' दवा और जुलाब देकर वह चला गया।

लेकिन नियम से रहेगा कौन? सावित्री खुद तो रसोई बनाती नहीं! प्रतिदिन वे यहाँ से डेढ़ मील पैदल चलकर मन्दिर जाती हैं और फिर भरी दुपहरी में बारह-साढ़े बारह बजे वापस आती हैं। लौटकर खाली पानी पीकर लेट जाती हैं। भगवान का प्रसाद किसी दिन तीन बजे आता है तो किसी-किसी दिन चार-पांच भी बज जाते हैं। तीन बजे तो बहुत कम ही आता है। वही प्रसाद खाती है—सारे दिन में एक बार। अपना यह नियम बदलने के लिए वे राजी नहीं हैं।

लता ने चिन्तित होकर पूछा, 'तुम क्या आत्म-हत्या करना चाहती हो माँ।'

'नहीं लल्ली! ऐसी बात नहीं कहते यह सच है कि जीवन के प्रति अब मुझे कोई मोह नहीं है—लेकिन तो भी जान बूझ कर नहीं मरूँगी।'

'एक रसोइया रख दूँ जो सुबह तुम्हारी रसोई बना दिया करेगा।'

'नहीं, नहीं: इन सब झंझटों में मैं नहीं पड़ना चाहती।'

'अच्छी बात है। जब तक मैं हूँ, मैं ही बना दिया करूँगी।'

'और जितने दिन हूँ, प्रसाद ही खाने दे—उसे क्यों छोड़ूँ।'

'प्रसाद की बात नहीं है। प्रश्न है बे वक्त का।'

'मेरा अब वही वक्त हो गया है। सिर्फ एक ही वक्त खाती हूँ न—जब भी मिल जाय ठीक है।'

दवा की वजह से या लता को पाकर ही हो—सावित्री कुछ स्वस्थ अवश्य हो गयी। चलते वक्त लता ने कहा, 'इम्तिहान देकर ही मैं चली आऊँगी माँ। तब मैं तुम्हारी एक नहीं सुनूँगी—खुद अपने हाथ से बना कर खिलाया करूँगी। मेरे आने तक जरा बीमार न पड़ना, ठीक रहना।'

सावित्री ने हँस कर कहा, 'अच्छा।'

उसके आने की प्रतीक्षा में ही मानों उसके प्राण अटके रहे। परीक्षा के आखिरी दिन ही वह रवाना हो गयी। पर वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि अब ज्यादा देर नहीं है। कहीं लता घबड़ा न जाय और परीक्षा न दे, इस डर से उन्होंने असली हालत के बारे में कुछ लिखा ही नहीं। हर पत्र में यही लिखवा देती थीं कि 'अच्छी हूँ।' समयाभाव के कारण दूसरे से चिट्ठी लिखाने का बहाना कर देती थीं। असल में स्वयं चिट्ठी लिखने की क्षमता भी उनमें नहीं थी। वे चुपचाप मृत्युयन्त्रणा सहन कर रही थीं।

लता ने पहुँचते ही दो-तीन बड़े डाक्टर बुलाये। पर जब तक सब कुछ खत्म होने को आगया था। तीन-चार दिन में ही सावित्री की सब यन्त्रणाओं का अन्त हो गया। यहाँ के लेन-देन और बोझ से सदा के लिए उनका छुटकारा हो गया।

जीवन के जिस पाप के लिए सावित्री जिम्मेदार नहीं थी, उस पाप का ही उन्होंने इतने दिनों तक कठोर प्रायश्चित्त किया। लेकिन फिर भी उनकी मृत्यु के साथ ही शायद वह प्रायश्चित्त खत्म नहीं हुआ। उत्तराधिकारी के रूप में वह लता के जिम्मे आया।

अब लता को वास्तव में अपने चारों ओर अन्धकार नजर आने लगा। माँ कैसे क्या करती थी, यह वह नहीं जानती। उनका कहाँ क्या है, यह भी उसे मालूम नहीं। अब उसका क्या कर्तव्य है, यह कौन बतायेगा। पास-पड़ोस की एक-दो वृद्धाओं ने आकर उसे अवश्य सांत्वना दी। उपदेश भी दिया कि, 'तुम बेटी अकेली क्या करोगी, नाते-रिश्तेदारों को खबर दो, उन्हें बुलाओ।'

लता किस नाते-रिश्तेदार को खबर दे। माँ के जो सगे सम्बन्धी हैं, उनमें से तो किसी एक को भी लता नहीं जानती। मौसी की उसे

यादहै, पर पता मालूम नहीं। और तो कोई उनका नहीं है। उसकी माँ के परिचित एक वकील जरूर हैं। रुपये-पैसे के सम्बन्ध में सलाह-मशविरा करने के लिए उसकी माँ उनके यहाँ कभी-कभी जाती थी। पर उनका ठिकाना या नाम-धाम तक वह नही जानती। एक हैं गुरुदेव गोस्वामी महाराज, उसने उन्हें ही तार भेजा।

तीसरे दिन ही गोस्वामी महाराज आ गये। वे पक्के आदमी हैं। यहाँ आते ही खोज खबर लेकर उन्होंने पता लगा लिया कि यहाँ के पोस्ट आफिस में सावित्री के पाँच सौ रुपये जमा हे। एक पंडे से यह भी मालूम हुआ कि यहाँ आते ही उन्होंने मठ के महन्त के पास तीन सौ रुपये जमा कराये थे। महन्त से जिरह करने पर उसने यह स्वीकार किया और चार-पाँच आदमियों के सामने लता को रुपये दे दिये। तीन सो रुपये, दो गिन्नी और दो भरी की एक सोने की चैन।

उस रकम से ही किसी तरह श्राद्ध इत्यादि किया गया। मठ के महन्त और पंडा को एक-एक गिन्नी देकर उसने वृन्दावन से विदा ली।

रास्ते में गोस्वामी जी ने पूछा, 'कहाँ ठहरोगी! होस्टल में या अपने मकान में?'

कुछ संकोच के साथ लता ने कहा, 'अभी छुट्टियाँ तो हुई नहीं हैं, होस्टल में भीड़ होगी। समझ मे नहीं आता—एक बार सोचती हूँ कि अपने मकान में जाना ही ठीक होगा।'

'लेकिन कैलाश नहीं है—वे कमरे भी वर्षों से बन्द हैं, वहाँ रह सकोगी? सफाई वगैरह कौन करेगा—'

'मैं ही करूँगी। चलिये, घर ही चलें।'

असली बात यह थी कि उस मकान के चिर परिचित वातावरण में बचपन की असंख्य स्मृतियां जगाने वाली चीजों में, वह अपनी माँ को अनुभव करना चाहती है। माता और पिता की स्मृतियों से जड़ित उस घर में उनकी चीजों के बीच बैठकर वह जरा रोना चाहती है।

गोस्वामी जी भी शायद उसके मन के भावों को ताड़ गये। वे साथ-साथ मकान में आये और किरायेदारों के एक नौकर से कमरों को झाड़-पोंछकर धुलवा दिया। कहीं लता कुछ खाये-पीये नहीं, इसलिये सारे दिन वहाँ रहे और खाना भी खाया। वहाँ तो कुछ भी नहीं था, यहाँ तक कि चूल्हा भी बाजार से खरीदकर मँगाना पड़ा; इसलिये मध्याह्न भोजन प्रायः चार बजे खत्म हुआ और चाय पीते-पीते शाम हो गई।

जब लता ने देखा कि महाराज यहाँ से जाने का नाम ही नहीं लेते तो उसने प्रश्न किया, 'आप रात को कहाँ रहेंगे?' असल में वह एकदम एकान्त चाहती है।

उसकी ओर देखकर गोस्वामीजी कुछ हँसे। जैसे कुछ अर्थपूर्ण हँसी, लेकिन लता इसका अर्थ नहीं समझती। कुछ क्षण चुप रहकर बोले, 'अगर कहो तो यहीं रह जाऊँ। तुम अकेली रहोगी पहला दिन है।'

'नहीं, इसकी आप चिन्ता न करें, मैं रह जाऊँगी।···लेकिन हाँ, यदि आपको किसी दूसरी जगह ठहरने में कोई असुविधा हो तो दूसरा कमरा खोलकर झाड़-पोंछ दूँ। आप यहीं आराम करें, मैं उस कमरे में सो रहूँगी।'

'नहीं-नहीं। इसकी कोई जरूरत नहीं। मुझे और भी एक जगह जाना है। तुम अकेली रह सकोगी न? एक-दो दिन तो मुझे यहाँ रहना ही होगा। तुम्हारे वकील से मिलकर इस मकान का भी तो कुछ प्रबन्ध करना है।'

वास्तव में, गोस्वामीजी की वह बहुत ऋणी है। अगर वे न होते तो लता क्या करती! यह भी अच्छा ही हुआ कि उस समय माँ ने उसे दीक्षा दिला दी थी।

लता ने उन्हें बहुत भक्तिभाव से प्रणाम किया। गोस्वामीजी ने माथे और पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे आशीर्वाद दिया। ठोड़ी पकड़कर उसका सिर ऊपर उठाया और हँसते हुए विदा हो गये।

५

प्रायः चार दिन बाद दोपहर के वक्त किरायेदार के दस-बारह साल के एक लड़के ने आकर खबर दी, 'आपके भाई साहब आये है। वे आपको खोज रहे है।'

'मेरे भाई साहब ? मेरा भाई कौन ? मेरा तो कोई भी भाई-वाई नहीं है। निश्चय ही तुमने सुनने में कुछ गलती की है।'

'जी नहीं, उन्होंने आपका ही नाम लिया। मुझ से कहा, तुम शायद हमारे नये किरायेदार हो ? अच्छा !···उनके साथ एक औरत भी है।'

लता की समझ में कुछ नहीं आया। लेकिन तो भी किसी भावी अमंगल और संकट की आशंका से जैसे उसका दिल बैठ गया, बर्फ जैसा ठंडा हो गया। वह एक किताब पढ़ रही थी, किताब रखकर जल्दी से कमरे से बाहर जाने वाली ही थी कि क्या देखती है कि आगुन्तक उसके कमरे के सामने आ पहुँचे हैं।

दुबला-पतला और लम्बा—इकहरे बदन का एक व्यक्ति। उम्र बहुत ज्यादा तो नहीं है, लेकिन चेहरे पर असंख्य झुर्रियाँ हैं, सिर के बाल भी कुछ काले-सफेद अधपके जैसे हैं। लम्पटता और दुराचार के चिन्ह्न चेहरे पर सुस्पष्ट हैं। पिचके हुए गाल और अन्दर धँसी हुई लाल-लाल आँखें और हाथ में बीड़ी। लता को देखकर उसकी आखें जैसे एक-दम फटी की फटी रह गयीं, विस्मय और प्रशंसा से।

प्रायः एक मिनट तक वह आदमी उसकी ओर देखता रहा, वैसे ही अवाक होकर। लता की भी वही दशा थी। फिर जरा सूखी हँसी-हँसते हुए वह आगे बढ़ा, 'ओ, तुम ही लता हो न। बहुत अच्छा। अब तो बहुत बड़ी हो गई है। बड़ी सुन्दर भी हो!···मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ, रतन।'

रतन! सर्वनाश!

इस रतन को आज से पहले उसने कभी नही देखा था। उसके जन्म के पहले ही वह इस मकान से चला गया था। अपनी माँ से उसने दो-एक बार नाम सुना था, बहुत ही अनिच्छापूर्वक, दैवात् जब बातचीत के सिलसिले में उसका नाम आ गया है।···पर उसका तो कोई पता ही नहीं था न कहीं भी कोई चिह्न नहीं मिला था। इधर तो सावित्री को विश्वास हो गया था कि वह यह मर गया है। वे तो उसको बिलकुल भूल ही चुकी थीं।

लता के मुख पर घबराहट का भाव देखकर रतन के पीछे खड़ी हुई औरत आगे बढ़ी, 'क्योंरी लता, मुझे पहचानती है? मैं तेरी मौसी हूँ।'

एक धुंधले से चेहरे की उसे याद आती है। गहनों से लदी और उत्कृष्ट प्रसाधान के बावजूद भी पुरातन स्मृति उसे पहचान लेती है—यह उसकी वही मौसी है जिसे उसकी माँ ने तीर्थयात्रा से लौटकर भगा दिया था।

पर ये लोग यहाँ क्यों? किस इरादे से फिर आये है! लता के कपाल पर पसीना आ गया। पसीने की बड़ी-बड़ी बूंदें।

'हटो, जरा हटो तो, देखूं घर का क्या हाल है—'

यह कहकर उसे एक प्रकार से हटाते हुए रतन कमरे में घुस गया। फिर बिना पूछे ही 'आह' करते हुए लता के बिस्तरे पर लेटकर सिगरेट पीने लगा। उसके पीछे-पीछे मौसी भी कमरे में दाखिल हो गई।

'देखो मौसी, माँ ने कितने वर्षों से मकान की मरम्मत ही नहीं करायी! अब मरम्मत करानी होगी, सफेदी भी जरूरी है।'

'हाँ, इसमें क्या शक ! हमारी जीजी का तो इस ओर कतई ध्यान था ही नहीं !' मौसी ने हाँ में हाँ मिलायी।

'बताओ तो जरा, वह क्या और कितना रुपया-उपया छोड़ गयी हैं। यह तो देख ही रहा हूँ कि बिना मरम्मत कराये काम नहीं चलेगा।'

फिर बहुत ही सहज भाव से कहा, 'ए लता, लोहे के सन्दूक की चाबी दो तो—क्या है और क्या नहीं यह सब तो मुझे ही देखना होगा।'

इतनी देर बाद लता बोली। बहुत ही दीन भाव से मौसी की ओर देखते हुए उसने कहा, 'यह सब क्या है। यहाँ—इस तरह से—यानी ये किरायेदार मेरा कुछ दूसरा ही परिचय जानते हैं—'

मौसी का इतने दिनों का संचित विष मानों फूट पड़ा। हाथ-पैर मटकाते हुए मुँह बनाकर बोली, 'तो कान खोलकर सुन ले, अब तेरा यह झूठा परिचय नहीं चलेगा। बबूल के पेड़ में आम नहीं लगता, तुम जो हो वही रहोगी। नाम-धाम बदलकर चार दिन स्कूल में पढ़ लेने से तुम देवी नहीं बन जाओगी। वह है उसका बेटा, इस धन-सम्पत्ति का मालिक वही है—उसे सारा हिसाब-किताब समझाना होगा, समझीं! ...वह तो इधर-उधर मारा-मारा फिरे और तुम माँ का सोलह आना धन भोग करो—यह कभी नहीं होगा ! हमारे जिन्दा रहते हुए यह नहीं हो सकता। हमारे लिए तो जैसी तुम वैसा रतन। बल्कि रतन ज्यादा है, वह बेटा है—उसकी प्रथम सन्तान !'

'हियर-हियर ! वाह मौसी, तुमने बिलकुल ठीक कहा, सोलहों आने सच ! तुम्हारे मुँह में घी और शक्कर। रतन ने उन्हें जैसे और बढ़ावा दिया।

लता को इस दुनियाँ की जानकारी या अनुभव बहुत अधिक नहीं है, लेकिन इस समय इन लोगों का मनोभाव उसके सामने सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट हो उठा। शायद रतन मौसी के यहाँ बहुत दिनों से आता-जाता है, मौसी को शायद सब मालूम है। लेकिन सावित्री को

यदि पहले से मालूम हो जाता तो वे सतर्क हो जातीं, लता के नाम ही सारी वसीयत कर जायें, इसलिए उन्हें रतन के अस्तित्व के बारे में कुछ भी नहीं जानने दिया गया। स्वाभाविक कायदे-कानून के अनुसार लता को ही सब कुछ मिलेगा, यह सोचकर ही उन्होंने लिखा-पढ़ी का ख्याल तक नहीं किया--निश्चन्त ही थीं। अब ये लोग अपना मतलब गाँठने आये हैं।

मौसी को पुराना क्षोभ है। सावित्री ने उसकी छाया तक को यहाँ नहीं फटकने दिया था, उन लोगों के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध तक नहीं रखती थीं। अपना वह अपमान और तिरस्कार मौसी भूली नहीं है। यह उसका ही बदला है। रतन के प्रति यह प्रेम नहीं है। शायद यह भी हो सकता है कि इसमें आपस में बँटवारे की बात भी पक्की हो गयी हो—

कैसा एक आतंक, एक असहाय भाव और अनजान भय से लता घबरा गयी। उसने एक बार रतन और एक बार मौसी के मुख की ओर देखा। फिर कमरे से भागी, दौड़ते हुए बरामदा और सीढ़ियों को पार किया और सड़क पर आ गयी। लेकिन सड़क पर आकर भी वह रुकी नहीं। जैसे उसे कोई खदेड़ रहा है, जबरदस्ती भगा रहा है—ऐसे ही पागलों की तरह वह सड़क पर भी दौड़ते हुए आगे बढ़ती गयी। राहगीर ताज्जुब से उसके अस्त-व्यस्त कपड़े, उत्तेजित लाल मुँह और पागलों जैसी दौड़ देखकर हैरान थे। पर उसका किसी भी ओर ध्यान नहीं था। किसी भी तरह भागकर जाना होगा—कहीं भी, सिर्फ यहाँ से जितनी भी दूर हो उतना ही अच्छा है।

तो भी, उसके कदम अभ्यस्त और ज्ञात पथ की ओर ही बढ़ रहे थे। अचानक लता ने देखा कि वह अपने होस्टल के सामने जा पहुँची है। उसे इस हालत में देखकर शान्ती बहन अवाक रह गयीं। यह भी अच्छा हुआ कि दो दिन पहले ही गर्मी की छुट्टियाँ शुरू हो गयी थीं, इसलिए दूसरी लड़कियों के सामने लता को सफाई देने की जरूरत नहीं

पड़ी ! शान्ती बहन उसे अपने कमरे में ऊपर ले गयीं । कुर्सी आगे बढ़ाते हुए कहा, 'लो जरा आराम से सुस्ता लो । तुम्हारी बातें फिर सुनूँगी ।' पंखा उन्होंने फुल-स्पीड पर चला दिया ।

कुर्सी पर बैठते ही लता जैसे लुढ़क गयी—नशेबाज की तरह । उसके पैर अब भी थर-थर कांप रहे थे, दिल की धड़कन जैसे बन्द हुआ ही चाहती है । सारे रास्ते वह दौड़ कर जो आयी है । शान्ती बहन ने उसे शरबत दिया । शरबत पीने के बाद जैसे कुछ दम-में-दम आया, उसने अपनी आँखें मलीं और तब कहीं जाकर लता बोल पायी ।

सारी बातें सुनकर शान्ति बहन चिंचित हो गयीं । काफी देर तक चुप बैठे रहने के बाद बोलीं, 'यह काम तो अच्छा नहीं हुआ लता, वे लोग जो कुछ लेने आये थे वह सारा-का-सारा बिना किसी विरोध या प्रतिवाद के ही तुमने सौंप दिया । अपने साथ अपने दो-चार कपड़े लाने का भी तुम्हें मौका नहीं मिला ।···लेकिन इसके अलावा तुम और कर भी क्या सकती थीं ।'

लता के हाथों में सोने की चार-चार चूड़ियाँ पड़ी रहती थीं, लेकिन इस समय वे भी नहीं हैं ।

'तुम्हारी चूड़ियाँ क्या हुईं ?'

'मैंने उन्हें उतारकर लोहे की सन्दूकची में रख दिया था ।'

'और गले की चेन ? वह भी क्यों ?'

'माँ की मृत्यु के बाद मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था, शान्ती बहन ।'

'हूँ ! अब तक तो उन लोगों ने सब चीजें हथिया भी ली होंगी । चाबी कहाँ है ।'

'बिस्तरे के नीचे —'

'और तुम्हारी माँ के गहने ?'

'उन्होंने अपने बहुत से जेवर बेचे थे, यह मुझे मालूम है । लेकिन

थोड़े बहुत सन्दूक में भी थे। अपने कुछ बहुत कीमती जेवर उन्होंने यहाँ किसी के पास रखाये भी थे। पर किस के यहाँ, यह मुझे नहीं पता ?'

'शायद तुम्हारे वकील को मालुम होगा। पर वे कहाँ रहते हैं, यह भी तो नहीं मालूम। मेरे ख्याल में तो सबसे अच्छा यही होगा कि तुम अपने गुरुदेव को तार दे दो।'

फिर कुछ देर चुप रहने के बाद बोलीं, 'खैर, यह बड़ी किस्मत थी जो तुम बचकर चली आयीं। मैं जितना ही सोचती हूँ मेरा यह पक्का विश्वास होता जाता है कि सिर्फ तुम्हारी सम्पत्ति हथियाने ही नहीं—बल्कि तुम को भी अपने कब्जे में करने का उनका इरादा था। तुम्हारी जैसी सुन्दर लड़की मिल जाने पर उन की आमदनी का सीधा-सादा रास्ता जो खुल जाता। ईश्वर को धन्यवाद दो—उन्होंने ही तुम्हारी रक्षा की।'

शान्ती बहन ने स्वयं हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

इसके बाद गोस्वामी जी को जरूरी तार भेजकर उनकी प्रतीक्षा करने के अलावा और कोई उपाय भी नहीं था। पहनने के लिए शान्ती बहन ने ही उसे कपड़े दिये—ब्लाउज खरीदकर मँगवायी। यह सच है कि सिर्फ अपने गुरू गोस्वामी जी महाराज के अनुरोध से ही लता को उन्होंने प्रारम्भ में होस्टल में रखा था, लेकिन बाद में धीरे-धीरे इस शान्त, सुशील और सुन्दर लड़की को वे भी चाहने लगी थीं।

दूसरे दिन शाम को महरी ने खबर दी कि लता से मिलने कोई औरत आई है।

'औरत ? क्या नाम बताया ?' पर इस बीच ही लता का मुँह पीला पड़ गया।

'अच्छी औरत नहीं मालूम होती, जाने कैसी है।'

'हूँ । लता तुम यहीं बैठी रहो । मैं जाती हूँ । उसे दफ्तर में बैठा ।'

दफ्तर में घुसते ही आगुन्तका का जो रूप-रंग, पोशाक और हाव-भाव देखे तो शान्ति को इसमें तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि यह स्त्री ही लता की मौसी है ।

'आप क्या चाहती है ?' कड़े और रूखे स्वर में शान्ति ने पूछा ।

'नमस्ते बहिन जी । देखिये मैं लता की मौसी हूँ ।·· सुना है कि वह कल यहां आ गई । पगली बेटी, रूठकर यहां भाग आयी है—इसलिये उसे मनाकर घर ले जाना चाहती हूँ ।···उस बेचारी की माँ मर गई यह तो आपको मालूम ही होगा—अब उसकी देखभाल के लिए मेरे सिवाय कौन है, मैं ही उसकी अभिभावक हूँ न ।'

'लेकिन वह यदि न जाना चाहती हो, तो ?'

'वाह, वह जाना क्यों नहीं चाहेगी ? शायद आपको पता नहीं कि लोगों ने उसे बहका दिया है, इसीलिए ऐसी हो गयी है । मैं उसकी सगी मौसी हूँ, उसका अपना बड़ा भाई है—बिना गये कैसे चलेगा ? नाबालिग लड़की है, जहाँ उसकी खुशी हो वहाँ नहीं छोड़ा जा सकता । और हाँ, यदि आप अपने यहाँ उसे रखेंगी तो आप भी मुसीबत में पड़ेंगी—जरा गोलमोल होने पर आपके इस होस्टल की बदनामी भी तो चारों ओर फैलेगी ।'

'देखिये, व्यर्थ की बातें करने का न तो मेरे पास समय है और न इच्छा ही है । आपका इरादा मैं खूब अच्छी तरह जानती हूँ—' शान्ति बहन की आवाज और भी कड़ी हो गयी, 'मुझे डराने की धृष्ठता न करें । उसकी जो उम्र है, उसके मुताबिक वह नाबालिग नहीं है । और उसका कोई बड़ा भाई जिन्दा भी है या नहीं, यह मैं नहीं जानती । मैं भी आपको सलाह देती हूँ कि चुपचाप यहाँ से अपनी तशरीफ ले जायें । अदालत में जाने पर भी आपको कुछ नहीं मिलेगा । उस गरीब को इस तरह परेशान न करें । उसके गुरुदेव है, वकील हैं, वास्तव में वे ही उसके अभिभावक हैं ।···उसके मकान मे कल आप जबरदस्ती घुस गयीं—

लेकिन याद रखिये, यदि एक भी चीज इधर से उधर हुई तो इसकी जवाबदेही आप पर होगी।'

'क्या ? यह बात है। अच्छा देखा जायगा। कायदे-कानून मैं भी खूब जानती हूँ। तीन साल तक वकील की रखेली रह चुकी हूँ। मेरे लिए कुछ भी जानना बाकी नहीं है। सीधी अँगुली से यदि घी न निकले तो टेढ़ी अँगुली से निकालना भी मैं जानती हूँ। गुरुदेव, गोस्वामी जी महाराज ! उस गोस्वामी को भी मैं खूब अच्छी तरह जानती हूँ। कौन कितने पानी में है, यह मुझसे छिपा नहीं है। जरा उनसे पूछियेगा तो सही कि सेवा-समिति से उन्हें क्यों निकाला गया।'

उसने जैसे बाजी जीत ली, इस तरह से आँखें मटका, मुंह बना और हाथ नचाते हुए वह चली गयी।

शान्ति बहन ने ऊपर आकर लता को सारी बातें सुनायी। भय, दुःख और अपमान से उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। पर शान्ति बहन भी चुप बैठने वाली नहीं है। उन्होंने लता से किरायेदार के नाम एक पत्र लिखवाया कि पत्रवाहक के हाथ लता का संदूक भेज दे।

फीकी हँसी हँसते हुए लता ने कहा, 'वे लोग भला देंगे ?'

'देखा जाय। यदि तुमको अपने अधिकार में करना चाहते है तो संदूक जरूर भेजेंगे।'

शान्ति बहन ने दरवान के हाथ पत्र भिजवा दिया। कुछ देर बाद वह वाकई संदूक ले आया। पत्र मिलते ही किरायेदार फौरन ऊपर मौसी के पास गया। मौसी को चिट्ठी दिखलाते ही उन्होंने संदूक दे दिया और कहा, 'हाँ-हाँ, ठीक है। रूठकर पगली बिटिया चली गयी, अपने कपड़े-लत्ते भी छोड़ गई। वह रूठ गई तो इसका यह मतलब थोड़े ही है कि हम भी नाराज होकर उसका बक्स नहीं देंगे ? मैं क्या नहीं समझती कि उसे तकलीफ हो रही होगी ? नासमझ, नादान कहीं की— उसका ख्याल है कि इतने दिनों तक हमने उसकी जानबूझ कर ही खबर नहीं ली, इसलिए ही इतनी नाराज हो गयी है। ओह, बचपन में मुझसे

कितना प्रेम करती थी। जीजी ने ही तो हमलोगों को इतने दिन अलग रखा! क्या कर सकती थी, उनकी बेटी है, हमारा क्या जोर!···हाँ दरवान, यह संदूक ले जाओ, और कहना कि यदि कुछ गहने-वहने भी चाहियें तो खुद आकर ले जाय—कहाँ क्या रखा है हमे तो कुछ मालूम नहीं। इतना सब कुछ होते हुए भी मेरी प्यारी बिटिया नंगी रहेगी, यह कैसे हो सकता है।'

शान्ति बहन ने सब कुछ सुनकर हँसते हुए कहा, 'जेवर के बहाने वह किसी तरह एक बार तुम्हें अपने कब्जे में रखना चाहती है! खैर, कपड़े दे दिये यही बहुत है! सब ठीक है न!'

लता को यह ख्याल ही नहीं था। जब शान्ति बहन ने कहा, तो उसने बक्स खोलकर देखा। और सब तो ठीक है—सिर्फ नहीं है एक तो बॅंगलोरी रेशमी साड़ी और नहीं है उसकी माँ की चिट्ठियाँ।···वृन्दावन से जो सोने की चेन लाई थी, कपड़ों के नीचे वह भी मिल गई।

लता रोने लगी, 'शान्ति बहन, उन्होंने चिट्ठियाँ क्यों निकाल लीं? माँ की वे चिट्ठियाँ तो मेरे जीवन की सहारा थीं। इससे अच्छा था कि वे यह चैन रख लेतीं, पर चिट्ठी तो दे देती।'

उसके सिर पर हाथ फेरते हुए शान्ति बहन ने कहा, 'रोओ नहीं, अब चुप हो जाओ।···तेरी सम्पत्ति के प्रति उन्हें कोई लोभ नहीं है, यह दिखाने के लिए ही चेन छोड़ दी है। और चिट्ठियाँ इस डर से रख लीं कि उनमें मकान और सम्पत्ति के बारे में यदि कुछ निर्देश हो तो तुम उसे कहीं प्रमाण के रूप में पेश न कर दो।'

'माँ की सारी सम्पत्ति वे ले लें—पर मेरी चिट्ठियाँ लौटा दें। मेरी माँ की मेरे पास कोई निशानी नहीं रहेगी शान्ति बहन—यह कैसे हो सकता है।'

६

दूसरे दिन सुबह ही गोस्वामीजी आ पहुँचे। उन्होंने कहा, 'हाँ, मैंने वकील का पता लगा लिया है। लता को साथ ले जाऊँगा। शायद वे कोई उपाय बतायें। वे लता के पिता के जिगरी दोस्तों में से थे और इसकी माँ का भी बहुत आदर करते थे।'

लेकिन सारी बातें सुनने के बाद वकील साहब कुछ देर चुप रहे, जैसे किसी सोच में पड़ गये। फिर बोले, 'कुछ मुश्किल है गोस्वामीजी। लता की माँ यदि वसीयत कर जातीं तो बात दूसरी थी। पर अब तो रतन कम-से-कम आधे हिस्से का हकदार है ही—हाँ, यदि वह वास्तव में रतन है तो। यह कोई पक्की तरह जानता है?'

उन्होंने लता के मुंह की ओर देखा।

लता ने कहा, 'मैंने तो उसे इससे पहले कभी नहीं देखा। पर यह लगता है कि मौसी उसे पहचानती हैं। इसके अलावा मकान भी उसका कुछ जाना-पहचाना सा लगता है।'

'लेकिन वह रतन नहीं है, यह साबित करना भी तो एक समस्या होगी। इसमें फिर और पेचीदा सवाल आयेंगे। ऐसी कोई बहुत बड़ी सम्पत्ति भी नहीं है।'

'पर लता को आधा हिस्सा तो कानूनन मिलेगा न?'

'आधा हिस्सा देने को क्या वह इन्कार करता है? लता ही तो स्वयं भाग आयी है, उसने तो इसे नहीं भगाया।'

'लेकिन उनके साथ इसका रहना यदि असम्भव हो, आपत्तिजनक हो ?'

पार्टीशन सूट करना होगा। उसमें भी काफी हँगामा और खर्च है—उसमें मिट्टी के मोल मकान बिक सकता है।'

'ठीक कहते है ! तो फिर क्या उपाय है ?' गोस्वामीजी ने प्रश्न किया।

'उपाय एमिकेब्ली—यानी आपस में समझौता कर कुछ मिलता है या नहीं, यह चेष्टा कर देखिये ! मकान की क्या कीमत होगी—उसका आधा, उसके लिए मुकदमा करना बहुत मंहगा पड़ेगा ? काफी झंझट होगा। मैं केस चला सकता हूँ, पर उसमे खर्च तो बैठगा ही। इसके अलावा जो पब्लिसिटी होगी, उस पर भी जरा विचार कर लीजिये। लता के जिस परिचय को गुप्त रखने के लिए सावित्री देवी ने कुछ उठा नहीं रखा, लता के जीवन को सम्पूर्णतः नये सांचे में ढालने का जो उनका संकल्प था—उस परिचय को तो फिर आप गुप्त नही रख सकेंगे। मुकदमे की वजह से बात तो चारों ओर फैलेगी ही।'

मिनटभर सुस्ताकर उन्होंने फिर कहा, 'और एक बात।···यानी'··· खाँसकर उन्होंने गला साफ कर लिया, 'लता के माता-पिता तो कानून के अनुसार विवाहित नही थे। इस क्षेत्र मे, यानी पतिताओं की सम्पत्ति कानून के अनुसार सरकार की प्राप्य है—जबकि वे कोई 'विल' नही कर गयी हैं। मुकदमा करने पर केंचुली साफ करते-करते कहीं साँप न निकल पड़े ! यदि केस की दो-चार पेशियो के बाद ही सरकारी क्लेम हुआ—तब ?'

'यानी कोई उपाय नही है ?' निराशा भरे स्वर में गोस्वामीजी ने प्रश्न किया।

'उपाय तो कोई नजर नहीं आता। लेकिन हाँ, यदि वे लोग मेरे पास आये तो कोशिश करूँगा कि डरा-धमका कर उनसे कुछ वसूल कर लिया जाय। साथ ही आप भी यदि समझौता करके कुछ कर सकें,

किसी को मध्यस्थ वगैरह बनाकर—'

अर्थात् सब कुछ अनिश्चित और आशाहीन।

चलते वक्त वकील ने कहा, 'कहें तो अखबार में एक नोटिस छपा दूँ, उसका आधा हिस्सा यदि कोई लिटिगेशन सहित खरीदने को तैयार हो···भले ही बहुत कम दो-चार हजार रुपये ही दे, इतना भी मिल जाय तो कोई हर्ज नहीं!'

गोस्वामी जी ने कहा, 'जैसी आपकी मर्जी, जो अच्छा समझें कीजिये—इसका तो और कोई है नहीं।···अच्छा, मुझे पता चला है कि इसकी माँ के कुछ काफी कीमती जेवर और नकद रुपया जमा था, इस बारे में कुछ बता सकते हैं ?'

'जेवर के बारे में तो मुझे कुछ पता नहीं,' दूसरी ओर घुमाकर वकील ने जवाब दिया,···'लेकिन हाँ, बहुत दिनों पहले एक बार उन्होंने मेरे पास हजार रुपये जमा कराये थे। उसमें से उन्होंने शायद दो बार चार-चार सौ रुपये लिये थे—पक्का हिसाब तो देखकर ही बता सकता हूँ—बाकी प्रायः दो सौ रुपये हैं। लता को दे सकता हूँ, मुझे कोई आपत्ति नहीं।'

'यह आपकी कृपा है।'

'नहीं-नहीं, यह क्या कहते हैं! कृपा की क्या बात है, उसके लिए कुछ करना मेरा भी तो कर्त्तव्य है, लेकिन क्या करूँ, यह समझ में नहीं आता। अच्छा, कल-परसों इसे साथ ले आइयेगा तो रुपये दे दूँगा—'

बाहर निकलकर गोस्वामी जी ने कहा, 'इसके पास जरूर कीमती जेवर जमा होंगे, लेकिन चुपचाप दबा गया। अन्त में जाने क्या ख्याल आया कि दो सौ रुपये स्वीकार कर लिये।···मेरा विश्वास है कि उन्होंने नकद रुपया भी इसके पास काफी जमा कराया था—'

लता को उनकी यह बात अच्छी नहीं लगी। अभी उसकी कच्ची उम्र है। किताबी चश्मे से ही उसने अब तक दुनिया को देखा है। किसी के सम्बन्ध में फौरन ही खराब धारणा बनाना उसकी आदत

नहीं है। उसने कहा, 'हमें ठीक से तो कुछ मालूम नहीं, बिना जाने ही किसी को बेईमान नहीं समझ लेना चाहिये !'

'हूँ। तुमने नहीं देखा कि वकील साहब आँख से आँख मिलाकर बातें नहीं कर सके। तुम्हारी माँ मरने के समय न कुछ लिख गयीं और न किसी को कुछ बता ही गयीं। शायद लोहे के सन्दूक में ही उनके कागज-पत्र रखे हों। तुमने भी तो खोलकर नहीं देखा—'

सारे दिन लता सोचती रही। बल्कि यह कहा जा सकता है कि सारे दिन और सारी रात सोचती रही। विचारों की उधेड़-बुन में फँसी रही। किसी भी विषय पर अच्छी तरह सोच-विचार कर निर्णय करने की शक्ति मानो अब उसमें नहीं थी। इस असहाय अवस्था में उसे ऐसे आघातों का सामना करना पड़ा कि वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। अब कुछ नहीं है, किसी भी आशा-आकांक्षा की वह कल्पना तक नहीं कर सकती। किसी गम्भीर समस्या के उपस्थित होने पर मनुष्य भविष्य की किसी कल्पना के आधार पर ही निर्णय करता है। आज उसका सारा भविष्य ही अन्धकारमय है। कहीं भी कोई प्रकाश की धुंधली रेखा तक नहीं है जिसमें उसे पथ दिखाई पड़े।

अगले दिन सुबह ही शान्ति बहन ने उसे बुलाया और यही प्रश्न किया, 'तो अब तुम क्या करोगी, इस बारे मे तुमने कुछ सोचा है, लता ?'

इन दो-तीन दिनों में ही लता का मुँह सूख गया है, चेहरा बहुत उतर गया है, आँखों में उदासी और सूनापन है। शान्ति बहन और गोस्वामीजी दोनों की ओर एक-एक बार असहाय दृष्टि से देखते हुए बोली, 'शान्ति बहन, मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता। आप ही लोग बताइये कि अब क्या करूँ ?'

'तुम रतन से लड़-झगड़कर जबरदस्ती उस मकान पर कब्जा कर सकती हो ?'

इस संभावना की कल्पना मात्र से ही लता सिहर उठी।

'मामला-मुकदमा करना चाहती हो ?'

'नहीं। इसके अलावा उसमें खर्च भी बहुत बैठेगा ?'

'तो फिर ?'

'मैं नहीं जानती।' फिर एक चुप्पी।

गोस्वामी जी ने प्रश्न किया, 'तुम उसे यहाँ काम-काज देकर उसकी पढ़ाई जारी नहीं रख सकतीं शान्ति—जब तक बी० ए० पास करे तब तक के लिए एक-दो ट्यूशन ही दिलवा दो।'

शान्ति बहन ने दुःखी भाव से सिर हिलाते हुए कहा, 'पिछले दो वर्षों से इस होस्टल को चलाने में मुझे काफी नुकसान हुआ है, ऐसी हालतमें मेरी हिम्मत नहीं होती। नहीं तो फिर कहनेकी ही क्या जरूरत थी ? इसके लिए मुझे कितना दुःख हो रहा है, यह भगवान ही जानता है। अवश्य दो-चार महीने की बात होती तो मैं परवाह नहीं करती लेकिन चार वर्ष का भार लेना—'

वाक्य बिना पूरा किये ही वे चुप हो गयीं।

गोस्वामी जी ने कहा, 'मैट्रिक का नतीजा निकलने के पहले तो कुछ किया भी नहीं जा सकता। मैट्रिक तो पास होना ही चाहिए। उसके बाद ही कहीं किसी काम का प्रश्न उठेगा।'

शान्ति बहन ने जल्दी से कहा, 'नतीजा तो महीने-डेढ़ महीने में निकल ही जायगा। तब तक लता यहीं रहे। अभी तो यह होस्टल खाली ही पड़ा है।'

'नहीं, इसकी क्या जरूरत है। बल्कि लता को मैं अपने साथ आश्रम में ले जाऊँगा। दो महीने, जब तक नतीजा नहीं निकलता, तब तक यह वहीं रहेगी। मैट्रिक पास कर लेने पर यहाँ किसी जगह कोई काम-काज दिलाने की कोशिश करूँगा। और अगर बदकिस्मती से पास न हुई—कुछ कहा नहीं जा सकता न—बल्कि तब तुम्हारी जरूरत पड़ेगी, जैसे भी हो उसे एक साल यहाँ रख कर मैट्रिक तो पास

करना ही होगा। अभी मैं तुम पर बोझ नहीं डालना चाहता।'

फिर कुछ हंसते हुए लता की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, 'तो अब तुम आश्रम में ही चलो, क्यों ? एक बार तुमने संयासिनी बनने की कोशिश की थी—अब देखो, यदि आश्रम का जीवन अच्छा लगे तो वहीं रह जाना—और यदि तुम कुछ काम करना चाहो तो इसके लिए भी वहाँ काफी क्षेत्र है !'

लता ने बहुत ही स्वाभाविक रूप से सिर हिला दिया। इस वक्त उसकी मानसिक दशा ऐसी थी कि जो भी प्रस्ताव किया जाता उस पर ही वह राजी हो जाती। पर एक बात उसे फौरन याद आ गयी—माँ की बात—वे उसे भगवान को भेंट करना चाहती थीं। शायद इसी कारण दूसरे रास्तों में एक न एक बाधा आ ही जाती है।

शुरू-शुरू में लता को आश्रम इतना बुरा नहीं लगा। शहर की लडकी को यहाँ के उन्मुक्त वातावरण और प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच जैसे कुछ आराम और शान्ति मिली। उसने आराम का साँस लिया। बाग-बगीचे, ताल-तलैये और खेत—जैसे उसके सामने आनन्द ही आनन्द है। यहाँ आकर मानो लता अपना सारा शोक और दुःख कुछ देर के लिए भूल गयी। खुले वातावरण में वह स्वच्छन्द घूमती-फिरती है, तालाब में तैरने की इच्छा होती है पर साहस नहीं होता।

लेकिन एक बात है। यह सन्यासियों का आश्रम था तपस्वी का साधना क्षेत्र जैसा उसे बिल्कुल नहीं लगता। यहाँ तो ऐसा लगता है जैसे एक बहुत जमींदारी हो। खेतीबारी, मकान बनवाना, आमदनी और खर्च का हिसाब-किताब—सब लोग इसी में लगे हुए हैं। गोस्वामीजी के और भी तीन-चार गुरु-भाई हैं, दो-चार सन्यासी शिष्य भी हैं। लेकिन उसे कोई भी भगवान का उपासक जैसा नहीं लगता, बल्कि सबके सब पक्के व्यवसायी जैसे लगते हैं। सबके सब आनेवालों में अपना-अपना

शिष्य बनाने की फिराक में रहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही उपदेश और भाषणों का जाल बिछाया जाता है। वे उपदेश या प्रवचन सुनने में तो अच्छे लगते हैं, पर होते हैं एकदम तत्वहीन। बहुत ही साधारण बातें, न उनमें कोई गम्भीरता होती है और न मौलिकता ही।

आस-पास के गाँव से और विशेषतः नजदीक के शहरों से जो घर-गृहस्थी वाले आते हैं, उनकी बहुत आवभगत और देखभाल की जाती है। उनके रहने और खाने-पीने का प्रबंध करने के लिए आश्रम का हर व्यक्ति ही जैसे व्यस्त हो जाता है। मन्दिर एक है लेकिन उसके द्वारा भी सबको ही संतुष्ट करने की कोशिश की गयी है। अर्थात् उसमें राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति है, शिवलिंग है, हनुमानजी भी हैं, शीतला माता हैं और गोपालजी भी हैं—यानी सभी प्रमुख देवी-देवता यथा स्थान विराजमान हैं। फलतः बारहों महीने एक-न-एक उत्सव और त्योहार लगा ही रहता है। इससे आमदनी भी अच्छी होती है और प्रचार कार्य भी जोरों से चलता रहता है।

मन्दिर से प्रायः दस कदम के फासले पर एक लम्बे 'बैरक' की तरह आधी कच्ची-पक्की कई कोठरियाँ बनी हुई हैं। इन्हीं में से एक में लता के रहने का प्रबंध हुआ। गोस्वामीजी ने ठीक अपनी बगल वाली कोठरी खाली कराके लता को दी। इस पर लता ने कुछ विस्मय प्रगट किया तो हँसते हुए वे बोले, 'आग से खेल रहा हूँ, समझी? इसलिये आग को हमेशा नजरों के सामने रखना होता है।'

यह कह कर लता की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए हँसे। लज्जा से लता लाल हो गयी।

इस बैरक के अलावा और भी कमरे हैं, दो-दो कमरे मिले हुए हैं। उनमें संन्यासी भी रहते हैं तथा आश्रम के और लोग भी। सबसे अच्छी और जो पक्की इमारत है, वह है आश्रम का गैस्टहाउस—शहरी भक्त और शिष्यों के लिए।

स्थायी आश्रमवासिनियों में तीन विधवायें हैं। दो प्रायः वृद्धा हैं

और एक अधेड़ उम्र की। मंदिर में झाड़ू-बुहारी देना, पूजा की सामग्री बनाना और ऐसे ही छोटे-मोटे अनेक कामों का उन पर भार है। रसोई बनाने के लिए महाराज है।

इन महिलाओं से लता का परिचय हुआ, पर मेल नहीं। एक तो वे हमेशा ही व्यस्त रहतीं, और दूसरे न जाने क्यों इन महिलाओं ने शुरू से ही लता को कोई बहुत अच्छी नजर से नहीं देखा। बल्कि उनकी बातचीत और व्यवहार में कुछ रुखाई ही प्रकट होती। सब सन्यासी और आश्रमवासी लता की कुछ ज्यादा खातिर करते हैं—यही उनका मौन अभियोग है।

लेकिन लता को कुछ सहारा मिला—उसके आने के चार दिन बाद ही रानी नामक एक नयी युवती आश्रममें आयी। रानी सधवा है उसका पति रेलवेमें काम करता है। युवती की उम्र बहुत ज्यादा नही है, लेकिन दुःख और शोक से जैसे एक दम बावली हो गई है। उसके तीन चार बच्चे होने के थोड़े-थोड़े दिनों बाद ही जाते रहे। यह दुःख तो किसी तरह बर्दाश्त कर लिया था, पर अभी जब कुछ दिनों पहले उसकी एक मात्र जीवित सन्तान—चार साल का लड़का भी जाता रहा तो उसकी सारी सहनशीलता और संयम का बाँध टूट गया। यह हाल देखकर उसके पति उसे आश्रम में छोड़ गये है ताकि पूजा-पाठ और गोस्वामी जी के उपदेशों से उसे कुछ मानसिक शान्ति मिले, अपना दुःख भूल सके।

रानी अच्छी युवती है। देखने में भी अच्छी और स्वभाव भी अच्छा। लता को वहाँ पाकर जैसे उसके भी जी में जी आया। उससे वह बातें करती—अपनी घर-गृहस्थी की बातें। अपने बच्चों की बाते। बच्चों की याद कर वह फूट-फूट कर रोने लगती थी। उसका रोना देखकर लता की आंखें भी छलछला उठतीं, वह चुपचाप अपने आँसू पोंछ लेती। लेकिन अच्छी तरह रोने के बाद ही रानी को शान्ति मिलेगी, क्रमशः यह समझकर वह बाधा नही देती थी।

बीच-बीच में रानी को उसका ख्याल होता। वह लता से उसका

परिचय पूछती।

सिर झुकाये लता कहती, 'मेरी बातें सुनकर क्या करोगी ? यही समझ लीजिये कि कहीं भी कोई नही है, बिल्कुल अनाथ हूँ। इसलिये गुरुदेव गोस्वामी जी महाराज ने यहाँ आश्रय दे दिया है।'

गोस्वामी जी का नाम सुनते ही रानी प्रसन्न हो जाती, 'सच कहती हो, अगर वे नहीं होते तो पता नहीं मेरा क्या हाल होता। मेरे पागल होने में कसर ही क्या रह गयी थी। अपने मकान मे तो मेरा कलेजा फटा जाता था, मुझे अपने बच्चो की ही सूरत सब जगह नजर आती थी। गोस्वामी जी ने कहा, 'सुनोजो, कुछ दिनो के लिए रानी को हमारे आश्रम मे रहने दो, वहाँ उसे मानसिक शान्ति मिलेगी'।...वास्तव में, इन कई दिनो मे मैं जैसे कुछ ठीक हो गयी हूं, न ? देखो, कैसे देवता है ! कैसी-कैसी मजेदार बाते करते है, हंसी-मजाक भी खूब करते है, लेकिन उन सब बातों में भी कितने उपदेश छिपे रहते है।

रानी गोस्वामी जी की सेवा भी बहुत करती है। लता इतनी नही कर सकती। सुबह उठते ही बच्चों की तरह उनका मुँह धुलाना, बदन में तेल लगाना, उन्हे जलपान देना, उनकी पूजा-सामग्री तैयार करना— यानी हमेशा और हर सेवा। उनका जरा-सा भी कोई काम किसी को नहीं करने देती। जब उनकी सेवा से उसे फुर्सत मिलती है, तब ही गप-शप करती है।

लता भी कुछ काम करना चाहती है—मन्दिर का काम या पूजा की सामग्री तैयार करना चाहती है। पर ये सब काम तो वे अनुभवी आश्रमवासिनियां कर देती है, तब फिर वह क्या करे यह उसकी समझ मे नही आता।

एक दो बार उसने कहा भी, 'मुझे भी कुछ काम बताइये न।' वैसे ही उन बुढ़ियाओं ने सूखी हंसी हँसते हुए कहा, 'नही बेटी—हम तो है ही। दो-चार दिन के लिए तुम आयी हो, काम की फिक्र क्यों करती हो ? अभी तुम्हारे खेलने-खाने के दिन है—'

रसोई में जाकर वह दाल-चावल फटकना और गेहूँ बीनने आदि में कभी-कभी हाथ बंटा देती है। रसोई में ये सब काम जो स्त्रियाँ करती हैं, वे सब इसी गाँव की हैं। इन कामों के लिए उन्हें मजूरी मिलती है, उन्हें जितना कम काम करना पड़े उतना ही अच्छा। लेकिन जब वे बुढ़ियाएँ रसोई में पहुँच जाती हैं तो उसे कोई काम नहीं करने देतीं। उसके किये हुए काम में सैंकड़ों गलतियाँ निकालती हैं, पीठ पीछे उसकी हँसी उड़ाती हैं। लता को यह अच्छा नहीं लगता। एक दिन उसने गोस्वामी जी से इस बात की शिकायत भी की। लेकिन उन्होंने उसकी बात हँसी में उड़ा दी। 'अरे पगली, यह तो अच्छा ही है कि तुझे काम नहीं करने देतीं। काम करने की ऐसी क्या जरूरत है ? जितने दिन आराम से रह सके रह ले !'

'पर निठल्ले बैठे-बैठे कैसे मन लग सकता है, आप ही कहिये !'

'पुस्तकें पढ़ो न। आश्रम में तो सैंकड़ों धर्म ग्रन्थ हैं। जरा भजन और पूजा-पाठ करो, मैं तुम्हें पथ बता दूँगा—क्यों ?'

७

लता को यह बात कुछ जँच गयी। दूसरे दिन से उसने पूजा-पाठ और भजन का समय बढ़ा दिया। जहाँ तक होता है अपना ज्यादा समय पूजा-पाठ और भजन में ही बिताती है, बाकी समय कोई धर्म ग्रन्थ लेकर किसी पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ती रहती है। शाम को जब युवतियाँ गोस्वामी जी के पास जाकर बैठती हैं, तो किसी-किसी दिन वह भी चली जाती है। लेकिन वहाँ जिन सब विषयों पर वार्तालाप होता है, वह उसे अच्छा नहीं लगता। बहुत हल्की-फुल्की बातें, ज्यादातर व्यर्थ की ही बातें और हँसी-मजाक। कभी-कदाच धर्म-सम्बन्धी आलोचना भी जो होती है, वह लता को बचपना जैसी लगती है।··· किताबें पढ़कर भी बहुत शान्ति नहीं मिलती। ऐसा लगता है जैसे उनमें भी कोई तत्व नहीं है, सारहीन हैं। अधिकांश पुस्तकों में ही किसी एक विशेष देवता या किसी एक तथाकथित महापुरुष का विज्ञापन है। सर्व साधारण या समकालीन मनुष्यों की आध्यात्मिक उन्नति के बजाय अपना-अपना मत या अपने गुरु के प्रचार कार्य की ओर ही ज्यादा झुकाव है। यहाँ तक कि पुराण भी इससे नहीं बचे हैं। एक-एक ग्रन्थ में एक-एक देवता को ऐसा बढ़ाया गया है कि मानो जो कुछ है वही है, बाकी सब उसके सामने तुच्छ हैं। यहाँ तक कि एक ही घटना एक-एक पुराण में एक-एक देवता की महिमा बखान करती है।

फिर भी वह यथासाध्य चेष्टा करती है। उनकी अनेक बातों पर

विश्वास करने की पूरी चेष्टा करती है। पूजा या भजन के समय एकान्त भाव से मन में इष्ट-देव की धारणा करने का प्रयत्न करती है। व्याकुल भाव से भगवान को पुकारती है—हे भगवान, तुम मुझे सही पथ पर ले चलो। व्याकुलता के कारण आंखों से आंसू बहने लगते हैं मन ही मन कुछ आश्वस्त होती है, शायद इस बार उसकी साधना व्यर्थ नहीं होगी।

लेकिन जेठ मास के प्रलम्ब मध्याह्न में किसी-किसी दिन पेड़ की छाया में बैठे हुए जब वह सुदूर क्षितिज की ओर देखती है, जब मेघहीन आकाश से चिलचिलाती हुई धूप की अग्नि-वर्षा होती रहती है; तब न मालूम किस एक अनजान दुःख से, अज्ञात व्यथा से उसका हृदय रो उठता है। उसका कौनसा काम बाकी है, उसके इस जीवन को किसी एक सार्थकता से परिपूर्ण होना पड़ेगा —केवल यही विचार उठता है। मानो उसके असंख्य परिचित चारों ओर बिखरे हुए हैं और उन्हीं में से कम से कम एक व्यक्ति तो ऐसा खोजना ही होगा जिससे अपने मन की सारी बातें कही जा सकती हैं, सब बातें न कहने पर भी हृदय के मेल-मिलाप से बेतार के तार की तरह जिसके हृदय में सहानुभूति का स्वर स्वतः ही गूँज उठेगा।

परिपूर्ण सहज और स्वाभाविक नारी जीवन। जिसका आभास-मात्र उसे स्कूल की छात्राओं और मास्टरनियों की बातचीत में मिला है; साधारण घर-गृहस्थी की दैनिक जीवन-यात्रा, उसके समस्त सुख-दुःख, माधुर्य-वेदना के उस जीवन पर उसका अधिकार है या नहीं; आज भी वह यह नहीं समझ सकी है—उसी पारिवारिक जीवन का एक अमोघ आकर्षण उसे अपनी ओर खींचता है। वह आकर्षण उसे बेचैन कर देता है। जिसका परिचय उसे प्रत्यक्ष रूप से कभी नहीं मिला, उसी का रहस्य उसे उदास और व्याकुल कर देता है।

तो क्या उसका वही पथ है !

जेठ माह का यह आकाश, यह स्तम्भित पृथ्वी—ईश्वर की विभूति के

रुद्र प्रकाश में क्या यह वार्ता ही घोषित हो रही है ? उसकी यह तपस्या ईश्वरोपासना में स्वयं को लगाना, उसके चरणों में न्यौछावर हो जाने का यह प्रयास—इस बार भी तब क्या यह व्यर्थ ही हुआ । उसके जीवन के चरम मूल्य को क्या इससे नहीं चुकाया जा सकेगा ?

उसको कौन उत्तर देगा ? जो दे सकते थे, अज्ञान और अन्धकार से निकाल कर ज्ञान के प्रकाश में उसकी अन्तर्दृष्टि खोलने का भार जिन्होंने लिया है—उनसे लता ये सब प्रश्न नहीं करना चाहती । न जाने क्यों उसे ऐसा लगता है कि इसके उत्तर देने का अधिकार उन्हें नहीं है । जिस स्तर या श्रेणी के सन्यासी अथवा साधक होने पर वह उत्तर दे सकते थे—उस स्तर के वे नहीं हैं । यह सोचना भी शायद उस के लिए अपराध है, यह ख्याल आते ही वह मन-ही-मन सकुचा जाती है । लेकिन तो भी बिना सोचे रहा नहीं जाता ।

यह भी शायद उसकी एक दुर्बलता ही है । लता अपने मन को जोर से डाँटती है—किसी-किसी दिन आगे बढ़ जाती है, उनके पास आकर बैठती है । लेकिन बस इतना ही । वहाँ के उस वातावरण में उसका मन संकुचित हो जाता है, वह अपने विचारों को समेट लेती है ।

कह नहीं पाती ।

गोस्वामी जी मजाक करते हैं,'क्योंजी मॉडर्न भैरवी, नवीन तपस्विनी ऐसा लगता है जैसे तुम कुछ कहना चाहती हो, पर कह नहीं पाती ? निःसंकोच भाव से कहो, क्या बात है । तपस्या में कुछ बाधा-विघ्न पड़ रही है···स्नो, पाउडर आदि के अभाव मे क्या इष्ट देव की पूजा में ठीक तरह से मन नहीं लगता ? कहो, साफ-साफ कहो—डर किस बात का ? अभय देता हूं !'

उपस्थित श्रोता हँस पड़ते हैं । गोस्वामीजी ने फिर कहा, 'लता' इधर तुम काफी दुबली हो गयी हो ? कुछ गुम्म भी नजर आती हो । सुनो, अरे तपस्विनी, जरा अपने शरीर का भी ख्याल रखा करो । विधाता ने तुम्हें ऐसा सुन्दर और सुकुमार शरीर दिया है—उसको ही यदि तुम

इतनी लापरवाही से नष्ट कर दोगी तो फिर उनकी पूजा में क्या भेंट करोगी ?'

शर्म से लता वहीं गढ़ जाती है, भागने का रास्ता नहीं मिलता। ऐसी हालत में मन का प्रश्न बाहर निकलते-निकलते सकुचा कर रह जाता है।

एक दिन दोपहर को लता ब्रह्म-पुराण लिए हुए आश्रम के बगीचे में आम के एक पेड़ के नीचे बैठी हुई थी। यह स्थान मन्दिर के पीछे था और अपेक्षाकृत ज्यादा निर्जन भी। इसके अलावा अन्य पेड़ों की वजह से यह लता-कुंज जैसा बन गया था। यह जगह उसे बहुत पसन्द है, दोपहर को एकान्त में रहने का सुन्दर स्थान है।

पर उस दिन बहुत चेष्टा करने पर भी पढ़ने में उसका मन नहीं लगा। शायद बेहद गर्मी भी इसका एक कारण थी। जबरदस्ती प नें की कोशिश करते-करते उसे अचानक नींद आ गयी।

जब उसकी नींद टूटी तो उसे एक अद्भुत अनुभूति हुई। जैसे किसी ने उसका सिर अपनी गोद में रख रखा है, मुंह पोंछ रहा है जैसे बचपन में माँ पोंछती थी। माँ-माँ—

तो क्या स्वप्न में उसने अपनी माँ को ही देखा है ?

लेकिन नहीं। आँखें खोल कर उसने आश्चर्य से देखा कि गोस्वामी जी बैठे हुए हैं और उनकी गोद में ही उसका सिर है—बहुत धीरे-धीरे और स्नेह से अपने गेरुआ दुपट्टे से वे उसके ललाट, कपोल और गर्दन का पसीना पोंछ रहे हैं।

चौंककर वह फौरन उठ बैठी और उसने उनके पैर छुए।

'अरे आप ?'

'हाँ, क्या हुआ। इधर से जा रहा था, देखा कि पसीने से तर-बतर है लेकिन एकदम बेखबर सो रही है। यह देखकर मुझे बहुत दया आयी

और बैठ गया। जा, अब अपने कमरे में जा, इस गर्मी में कमरे से बाहर निकलने की जरूरत नहीं।'

फिर कुछ हँस कर, उसका एक शिथिल हाथ अपने हाथ में लेकर दबाते हुए बोले, 'उस वक्त ऐसा लग रहा था कि तुम्हारा यह सुन्दर और सुकुमार शरीर इस गर्मी में झुलस जायेगा—'

अपना हाथ खींचकर लता उठ खड़ी हुई। जब देखो तब ये इस शरीर की ही प्रशंसा करते रहते हैं, उन्हें यह शोभा नहीं देता।

उस पुस्तक को उठाकर वह दो-चार कदम ही आगे बढ़ी थी कि गोस्वामी जी ने पुकारा, 'ऐ सुनो—'

लता रुक गयी, 'कुछ कह रहे है ?'

'हाँ, मैं यह देखना चाहता हूँ कि अपने इष्ट-देव की प्राप्ति में तुम्हें कहाँ तक सफलता मिली है। शाम को अपना पूजा-पाठ खत्म कर तुम मेरे पास आना। मैं तुम्हारी समस्याएं जानना चाहता हूँ।'

'अच्छा' कहकर सिर हिलाते हुए लता वहाँ से चली गयी। पीछे से उसे देखते हुए गोस्वामी जी स्तब्ध बैठे रहे।

लता अपनी कोठरी में जाकर लेटी तो उसे नींद आ गयी। आज उसे रह-रहकर अपनी माँ की याद आ रही थी। कितने स्नेह और सतर्कता पूर्वक उन्होंने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया—हमेशा उसके प्रति वे सजग रहती थीं ! लेकिन क्या माँ यह नहीं जानती थीं कि उनके चले जाने पर लता कितनी असहाय और अकेली रह जायेगी ?—तब फिर उन्होंने इतनी लापरवाहीसे अपने शरीर का अन्त क्यों किया?—तो क्या उसने कुछ गलती की थी।

माँ-माँ ! ओ मेरी माँ ! बहुत दिनों बाद माँ की याद कर लता रोयी, बहुत देर तक रोती रही।

थोड़ी देर बाद दरवाजा खोलते हुए रानी भीतर आयी।

'आओ रानी बहन।' अपनी आँखें और मुँह पोंछते हुए लता उठ कर बैठ गयी।

'अरे, तुम्हारी आँखें इतनी लाल क्यों हो रही हैं लता ? क्यों, क्या बात है ? शायद खूब रोयी हो ?' फिर उसकी खाट पर ही बगल में बैठ गयी, 'तुम्हारा मन बहुत अशान्त है, क्यों ? इसीलिए गोस्वामीजी ने कहा है कि आज शाम को विशेषतः सिर्फ तुम्हें ही उपदेश देंगे। ठीक है---ठीक है, उससे तुम्हें अवश्य शान्ति मिलेगी।'

रानी के स्वर में जैसे कुछ ईर्ष्या छिपी हुई थी ? आश्चर्य ! इसमें भी ईर्ष्या हो सकती है ? आश्चर्य से लता सोचती है।

कुछ देर बाद रानी ने फिर कहा, 'इधर कई दिनों से लगातार मुझे ही उपदेश दे रहे थे न। मैं उनकी पद-सेवा करती हूँ, और वे धीरे-धीरे कुछ न कुछ कहते ही रहते हैं। कभी उपदेश देते हैं, कभी पौराणिक कहानियाँ सुनाते हैं और कभी हँसी-मजाक भी करते हैं। सारी बातें भला मेरी समझ में थोड़े ही आती हैं ? पर उनकी बातें बड़ी मीठी होती हैं। मैं उस वक्त सब कुछ भूल जाती हूँ। यहाँ आये हुए अभी शायद मुझे महीना भर ही हुआ है, लेकिन इस अरसे में ही बहुत शान्ति का अनुभव करती हूँ। यह तो मानना ही होगा कि उनमें एक अलौकिक शक्ति है। तुम क्या कहती हो ? है न ?'

लता ने कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन रानी के उत्साह में कोई कमी नहीं पड़ी। वह कहती ही गयी, 'अभी मैं यहाँ और कुछ दिन रहूँगी, अपने घर नहीं जाऊँगी, शायद कभी नहीं जाऊँगी। अपने 'उनसे' भी मैंने यह बात कह दी है, उन्हें बुलाया भी है। क्या मालूम उन्हें देखते ही मुझे सारी पुरानी बातें फौरन याद आ जायें, डर लगता है कि कहीं फिर पागलों जैसी दशा न हो जाये---'

ऐसे ही रानी बहुत देर तक अपने आप जाने क्या-क्या बकती रही। लता ने कुछ सुना और कुछ नहीं सुना। मन ही मन वह सोचती है कि इनकी तरह ही उसके मन में भी सहज भक्ति और विश्वास क्यों नहीं होता ?

शाम को गोस्वामी जी के कमरे के भिड़े हुए दरवाजे को खोलते हुए लता भीतर घुसी। कमरे में बहुत धीमा प्रकाश था। शायद कुछ देर पहले ही उनकी सन्ध्या-पूजा खत्म हुई थी। एक ओर आसन आदि अब भी बिछा हुआ था। बिस्तरे पर एक गोल तकिये के सहारे वे आधे लेटे और आधे बैठे हुए थे और रानी उनके पैर दबा रही थी।

लता के पहुँचते ही रानी खड़ी हो गई और दरवाजा भेड़कर बाहर चली गई। शायद ऐसा ही निर्देश था।

लता धीरे-धीरे आगे बढ़ी और रानी की जगह बैठकर उनके पैरों में हाथ लगाया।

'ऊँहूँ-ऊँहूँ, वहाँ नहीं, यहाँ मेरे पास बैठो। तुम्हारी बहुत सी बातें जो मुझे सुननी हैं।' गोस्वामी जी मानो चंचल हो उठे। उसका एक हाथ पकड़कर एक तरह से उसे खींचते हुए ही उन्होंने उसे एकदम अपने निकट बैठाया। लता को कुछ संकोच हुआ।

'हाँ, अब कहो—तुम्हें क्या कहना है?'

पहले तो लता की समझ में नहीं आया कि क्या कहे और किस तरह से कहे। जो कुछ वह कहना चाहती है, वह तो उसके मन में भी अस्पष्ट है—धुँधला-धुँधला है। अभी भी उसके विचार अच्छी तरह साफ नहीं हैं। तो भी रुक-रुककर और धीमे स्वर में लता ने अपना संशय और शंकाएँ बतायीं और उनके फलस्वरूप निराशा एवं व्यर्थता की वेदना। उसे किसी भी प्रकार शान्ति नहीं मिलती, अत्यन्त चेष्टा करने पर भी इष्ट-देव में मन नहीं बैठता। उसके हृदय में एकान्त आत्म-निवेदन की तृप्ति नहीं है—सिर्फ संशय और शंकाएँ ही हैं। वह सही रास्ते पर चल रही है या नहीं, किसी भी दिन सार्थकता मिलेगी या नहीं। भगवान के चरणों पर वह चरम आत्मोत्सर्ग किसी भी दिन कर पायेगी या नहीं। वह यह भी जानना चाहती है कि अपने मन को किस प्रकार संयत कर सकती है। चारों ओर की असंख्य मरीचिकाओं के पीछे उसके मन का आकर्षित होना कब बन्द होगा।

कहते-कहते क्रमशः लता अपने विचारों में खो गयी—अकस्मात जब वह सचेत न हुई तो उसने देखा कि गोस्वामी जी अपलक दृष्टि से उसे देख रहे हैं, उनके होठों पर हँसी की एक बहुत पतली-सी रेखा है। शायद उसमें व्यंग छिपा हुआ है। लता चुप हो गयी। उन्होंने उसके एक हाथ को दबाते हुए कहा, 'तुम बिल्कुल पगली हो। अभी से इतना संशय, इतनी शंका और चिन्ता क्यों? जो कुछ दैनिक कर्म हैं, उन्हें किये जाओ। अभ्यास भी एक योग है। बराबर अभ्यास करते रहने पर ही तो मन में बल आयगा, विश्वास आयेगा। जपयत सिद्धि।'

क्षण भर चुप रहकर फिर बोले, 'और तुम्हें इतनी चिन्ता-फिक्र क्यों है? तुम्हारे इह लोक को सँभालने-सुधारने का भार तो गुरू पर ही है और वह गुरू मैं हूँ। जब मैं ही तुम पर खुश हूँ तब फिर सोचने की क्या जरूरत। जानती हो न, गुरू अगर संतुष्ट रहें तो फिर किसी साधन-भजन की जरूरत ही क्या?'

लता ने सिर हिलाया, शायद यह सोचकर कि हाँ में हाँ मिलाना जरूरी है, उसका कर्त्तव्य है।

उन्होंने भी उत्साहित होकर उसको और भी नजदीक खींचने की चेष्टा करते हुए उसकी ठोड़ी पकड़कर जरा स्नेह जताया। फिर उसके माथे, पीठ और हाथ पर हाथ फेरते-फेरते अकस्मात बेखबरी में उसे एकदम अपनी छाती से चिपटा लिया, और लता के किसी प्रकार की बाधा देने के पहले ही उसके होंठ, कपाल और कपोलों पर चुम्बनों की झड़ी लगा दी।

कुछ क्षण तक लता बहुत व्याकुल रही। यह उसकी धारणा से परे था, कल्पना में भी उसने ऐसी आशंका कभी नहीं की थी। पर कुछ क्षणों के लिये ही। फिर एक झटके के साथ स्वयं को मुक्त कर लता खड़ी हो गयी। क्रोध और क्षोभ, दुःख और निराशा तथा उत्तेजना से वह थर-थर काँप रही थी। लेकिन तो भी इस अवस्था में उसका तीव्र स्वर निकला—दबा हुआ लेकिन तेज, घृणा और आत्म ग्लानि से भरा

हुआ स्वर, 'अगर फिर किसी दिन आपने ऐसी हरकत की तो आपके सामने ही गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी! इससे पहले तो मेरी मृत्यु हो जाना ही अच्छा था!'

वहाँ से दौड़ती हुई ही लता अपने कमरे में आयी और जोर से दरवाजा बन्द कर जमीन पर ही धम्म से गिर पड़ी। आत्म-धिक्कार व ग्लानि से जमीन पर अपना माथा ठोंकने लगी।

'माँ, माँ, —मुझे अपने पास बुला लो, अब मैं नहीं रह सकती!'

फिर प्राथमिक आवेग और उत्तेजना शान्त हो जाने पर जमीन पर ही थकी-माँदी लता अचल पड़ी रही। जरा शान्त होते ही उसकी प्रथम प्रतिक्रिया यह हुई कि यहाँ से भागकर कहीं और चली जाय। यहाँ से, इस आश्रम से, इस रात के खत्म होने के साथ-साथ ही यहाँ का अस्तित्व भी जैसे एकदम ओझल हो जाय—

लेकिन कहाँ जायगी?

अभी तक परीक्षा-फल नहीं निकला है। और अगर निकल भी जाय तो फौरन ही उसे कहाँ काम मिलेगा? इसके अलावा वह जहाँ भी जायगी, वहाँ भी तो ऐसी घटनायें हो सकती हैं। दुनियाँ में बहुत ज्यादा घुले-मिले बिना ही लता ने यह समझ लिया है। इसके सौन्दर्य में ऐसा दाह है कि निमेष में ही मनुष्य की पतंग-वृत्ति जागृत हो जाती है। उसके लिए आज कहीं भी निरापद आश्रय नहीं है। सदा ही उसे सतर्क रहकर और अपने को बचाते हुए जीवित रहना होगा। इस अधेड़ उम्र में जब एक सन्यासी की भी तपस्या भंग हो गयी तब फिर वह किस पर भरोसा कर सकती है?

और उसका अन्य आश्रय ही कहाँ है? शान्ती बहन? वे वैसे ही परेशान हैं, फिर उन पर अपना बोझ और लादना? नहीं, यह नहीं हो सकता।

सारी रात वह इसी उधेड़-बुन में रही। रात को खाना खाने के लिये रानी बुलाने आयी थी, पर सिर दर्द का बहाना कर वह नहीं गयी। सारी रात रोते और सोचते हुए भी उसे कोई उपाय नहीं सूझा। रात के अन्तिम प्रहर में जब थकावट और अवसाद से उसकी समस्त स्नायु अवसन्न हो गयीं तब उसने स्वप्न देखा—उसकी मां सिरहाने बैठी हुई उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरती हुई कह रही है, यह तो जीवन युद्ध शुरू हुआ है, अभी से हार मान लेगी तो कैसे चलेगा ?

क्षण भर में ही जैसे निराशा का भाव दूर हो गया। लता चटपट उठ बैठी। उस वक्त अंधेरा था। शीशे में अपना चेहरा देखकर वह खुद ही सिहर उठी। यह उसकी क्या शक्ल बनी हुई है, आश्रम के लोग देखेंगे तो क्या समझेंगे ?

जल्दी से तौलिया लेकर अंधकार में ही वह नदी में नहाने पहुंच गयी। बहुत देर तक नहाती रही। फिर गले तक पानी में खड़े होकर सूर्योदय की ज्योतिमयता को उसने प्रणाम किया—'हे सूर्य देवता तुम ही मेरी रक्षा करो,तुम मुझे बल दो,शक्ति दो।' पागलों की तरह अस्फुट स्वर में वह बार-बार यही दुहराने लगी।

गीले शरीर की शीतलता पर कुछ गरम-गरम आंसू भी बह गये। लेकिन इस बार वाकई उसे कुछ शान्ति मिली।

८

परीक्षा-फल निकल गया। लता फर्स्ट डिवीजन में पास हुई। शान्ति बहन ने तार से सूचना दी।

गोस्वामीजी ने उसे बुलाकर पूछा, 'इसके बाद? अब क्या करोगी?'

उस दिन की उस घटना के बाद से गोस्वामी जी ने फिर कभी किसी प्रकार की घनिष्ठता की चेष्टा नहीं की थी। लता भी उनसे बच-बचकर ही रहती थी। लेकिन हाँ, बाहरी व्यवहार पहले जैसा ही बनाये रखने के कारण आश्रम के अन्य लोगों को कुछ मालूम नहीं हुआ था।

उसके बाद आज पहली बार गोस्वामी जी ने उसे अपने कमरे में बुलाया है।

सिर झुकाये हुए लताने जवाब दिया,'मेरे लिये कमानेका कुछ जरिया कर दीजिये। स्कूल में मास्टरी या किसी आफिस में कुछ कामकाज—'

'सिर्फ मैट्रिक पास करने से ही दफ्तर में नौकरी नहीं मिलती। शार्टहैन्ड जानने पर कुछ चान्स रहता है। और स्कूल मास्टरी में वेतन ही क्या मिलेगा? मैट्रिक पास मास्टरनी को बीस-पच्चीस रुपया महीने से ज्यादा नहीं मिलता, उसमें क्या होगा?'

'जैसे भी होगा चला ही लूंगी। फिर शॉर्टहैंड सीखकर या आई० ए० की प्राइवेट परीक्षा देकर आगे बढ़ने की कोशिश करूँगी।'

उत्सुकता के साथ लता ने देखा। गोस्वामी जी कुछ देर मौन रहे। जैसे कुछ कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पा रहे हैं—उनके मुख पर कुछ ऐसे ही भाव थे।

अन्त में कह ही दिया, 'तुम वहाँ रहकर एफ० ए० में पढ़ो, जैसे भी

होगा मैं खर्च भेजता रहूँगा। एफ० ए० में पढ़ो भी और उसके साथ ही साथ शॉर्टहैंड भी सीख लो।'

लता ने बहुत दृढ़ता से सिर हिलाया, 'नहीं। देखिये, अब मैं किसी पर भी भार बनकर नहीं रहना चाहती। मैं खुद अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती हूँ। आप शान्ति बहन को लिख दीजिये—और अगर आप स्वयं चेष्टा करें तो नौकरी मिलना बहुत असंभव नहीं है। महीना चाहे जितना भी कम हो, उसमें मैं अपनी गुजर-बसर कर लूंगी।'

उसके चेहरे पर दृढ़ता के भाव देखकर गोस्वामी जी ने और ज्यादा जोर नहीं दिया। सिर्फ इतना ही कहा, 'बल्कि शान्ति के यहाँ रहने की व्यवस्था हो जाये तो कुछ महीने वहाँ रहकर ही स्टेनोग्राफी सीख लो—'

'अगर और कोई प्रबन्ध नहीं होगा तो ऐसा ही करना होगा। लेकिन इससे पहले यदि कुछ ऐसा हो सके कि थोड़ा बहुत भी कमाने लगूं तो वह सबसे अच्छा होगा। न होगा तो एक-दो महीने यहाँ और ठहर जाऊँगी।'

आश्चर्य, यहाँ भी उसका सारा खर्च गोस्वामी जी ही चला रहे हैं, इसका उसने ख्याल ही नहीं किया।

और उन्होंने भी इस बात का जरा इशारा तक नहीं किया, बल्कि कुछ हँसते हुए ही कहा, 'हाँ, यही ठीक है। देखूं, क्या कर सकता हूँ।'

असल में लता को आश्रम में रखना भी एक मुसीबत थी। लता में अन्ध भक्ति और विश्वास की कमी थी—जो उनके आश्रम के संचालन के लिये बहुत आवश्यक थी। छूत की बीमारी के कीड़ों की तरह लता के स्वतन्त्र विचार भी खतरनाक थे।......

लेकिन फिर भी इसके बाद दो महीने ऐसे ही कट गये। लता को यह निष्क्रियता असह्य है—अन्धकार और अनिश्चित भविष्य या भाग्य के भरोसे इस तरह बैठे रहना। पढ़ाई शुरू करने का भी कोई जरिया नहीं है—यहाँ जो लाइब्रेरी है उसमें धार्मिक ग्रन्थों के अलावा अन्य किसी भी विषय पर पुस्तकें नहीं हैं। गोस्वामी जी से कई बार तकाजा

कर उसने आई० ए० की एक दो किताबें मंगायी है—बहुत ध्यान से और मन लगाकर उन्हें पढ़ती है, पर आधा मतलब भी उसकी समझ में नहीं आता। यहाँ उसे कौन पढ़ायेगा ?

जब ऐसी अवस्था थी—तब और एक घटना ने उसे यहाँ से एका-एक अनजान भविष्य के पथ पर चलने को मजबूर कर दिया।...

कुछ दिनों से लता गौर कर रही थी कि रानी अस्वस्थ है। बीमारी क्या है यह तो उसकी समझ में नहीं आता, पर हाँ दिन व दिन वह जैसे पीली पड़ती जा रही है। खाने-पीने मे कोई रुचि नही। फिर उल्टियाँ होना शुरू हुआ, जो कुछ भी खाती है फौरन उल्टी हो जाती है। लता बेचैन हो उठी, बार-बार रानी से कहती है, 'रानी बहन, तुम्हारा हाजमा ठीक नही है, शायद बदहजमी है। इसीलिये उल्टियाँ होती है, किसी अच्छे डाक्टर को दिखाओ......'

लेकिन रानी तो जैसे एकदम निश्चिंत और निर्विकार है। वह हँस-कर कहती है, 'हट पगली, डाक्टर को क्या दिखाऊँगी ? ऐसा तो होता ही है। अपने आप ठीक हो जायगा।'

लता यह गौर कर और भी विस्मित होती है कि आश्रम में स्थायी रूप से रहने वाली जो तीन महिलायें है, वे भी इस संबंध में कतई चिन्तित नही है। बल्कि वे सब रानी को देखकर हँसती है, रानी के पीठ पीछे उसका मजाक उड़ाती है। लता की समझ में यह सब कुछ नहीं आता। इसमें कही न कहीं कोई रहस्य जरूर है पर लता उस रहस्य से सम्पूर्णतः अनभिज्ञ है।

इस बीच एक दिन रानी के पति आये।

रानी को यहाँ रहते हुए इतने दिन हो गये है, लेकिन इस बीच मे वे सिर्फ दो बार ही आये थे, वह भी बहुत थोड़ी-थोड़ी देर के लिए। इस बार आते ही सीधे गोस्वामी जी के कमरे में घुस गये। प्रायः दो-तीन घंटे बाद कमरे से निकले और सीधे नदी किनारे जाकर बैठ गए, गुमसुम। उन लोगोंके बहुत अनुरोध करनेपर भी उन्होंने कुछ नहीं खाया।

गोस्वामी जी की संध्या-पूजा होने के बाद वे फिर उनके कमरे में जा पहुँचे। इस बार रानी भी वहीं थी। कमरे में घुसते ही उन्होंने दरवाजा बंद कर लिया।

अर्थात् कुछ न कुछ गुरुतर घटना अवश्य हुई है। लेकिन क्या, लता कुछ भी नहीं समझ पाती। पर उसको ऐसा लगता है कि सिर्फ वही नहीं जानती, बाकी लोगों से जैसे असली बात छिपी हुई नहीं है। इस कारण लता मन ही मन स्वयं पर खीझ भी उठती है। रात क्रमशः बढ़ने लगी, आश्रमवासी और अतिथियों का खाना-पीना कब का खत्म हो चुका। लेकिन गोस्वामी जी के कमरे का दरवाजा अभी तक नहीं खुला। ऐसी क्या बात है, ऐसा क्या सलाह-मशविरा हो रहा है? या कि रानी के पति के आध्यात्म जीवन में ही कोई वेदना या असंतोष का कारण उपस्थित हुआ है, इसलिए पति-पत्नी दोनों एक साथ साधना का उपदेश ले रहे हैं। लता की समझ में कुछ नहीं आता, पर एक प्रबल कौतूहल उसे स्थिर नहीं रहने देता—वह बहुत रात तक जागती रही।

अन्त में एक बार खट् से दरवाजा खुलने की आवाज सुनाई दी। क्षण भर बाद ही आंधी की तरह रानी कमरे में घुसी और उसने दरवाजा बन्द कर लिया। और फिर अपने बिस्तरे पर जैसे पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

'क्या हुआ, ओ रानी बहन? तुम्हें क्या हुआ?' व्याकुल भाव से लता ने प्रश्न किया।

बहुत देर बाद रानी उठकर बैठी। आंखों के नीचे इस बीच ही जैसे किसी ने कालिख पोत दी है, बाल भी बिखरे हुए हैं, अस्त-व्यस्त कपड़े हैं। रोते-रोते उसकी आंखें सूज गयी हैं।

'वे ऐसी बातें क्यों कहते हैं। यह पाप नहीं है? मैं यह पाप करूँ? मैंने तो कुछ अपराध नहीं किया।'

'वे लोग क्या कहते हैं, रानी बहन? क्या करने के लिए कहते हैं?'

'वे लोग नहीं, सिर्फ मेरे 'वे' कहते हैं। और गोस्वामी जी भी उनकी हाँ में हाँ मिला रहे हैं। क्यों, महाराज क्यों हाँ में हाँ मिलाते हैं। उन्हें तो इसके लिए मना करना चाहिये न ?'

'लेकिन रानी बहन, बात क्या है, मैं तो कुछ नहीं समझी। सारी बातें मुझे बताओ न ?'

'वे कहते हैं कि बच्चे को नष्ट कर दो। पर मैं क्यों गिराऊँ ? भ्रूण हत्या करना क्या अपराध नहीं है बहन ?'

'बच्चा ? कैसा बच्चा ? किसका बच्चा ?' बुद्धू की तरह लता उसकी ओर देखती है।

'जो मेरे होगा। पेट में बच्चा है न ?—उसी का।'

'ओ—आप गर्भवती हैं ! इसीलिए—'

इतनी देर बाद रानी को कै होने का कारण और वृद्धाओं की हँसी तथा बेफिक्री का भाव उसकी समझ में ठीक से आया।

लेकिन रानी को इसका कोई ख्याल नहीं है। व्याकुल भाव से वह लता के मुँह की ओर देखती है, फिर स्वाभाविक रूप से ही कहती है, 'मैंने तो कोई अपराध नहीं किया बहन। गोस्वामी जी महाराज ने तो स्वयं मुझसे अनेकों बार कहा है कि गुरु की सेवा करते हुए सन्तान लाभ करना हमारे देश की बहुत पुरानी प्रथा है। मेरी कोई सन्तान जीवित नहीं रहती, इसीलिये तो गोस्वामी ने कृपा करके मुझे यह सन्तान दी है। इसकी वजह से उनकी साधना में कितनी बाधा-विघ्न पड़ी है—तब भी। तब, तब फिर, क्यों मैं इस सन्तान को नष्ट करूँ ? इसमें इतने नाराज क्यों होते हो जी ?'

ये बातें वेदना, क्षोभ और विस्मय के कारण रानी के मुँह से अपने आप ही निकल पड़ती हैं। और इधर लता के मुँह से एक शब्द तक नहीं निकलता। इस पर विश्वास नहीं होता !

'रानी, रानी बहन—वाकई तुमने—? तुमने क्या किया ?'

लता अपना वाक्य पूरा नहीं कर सकी।

उसके इस भाव से मानो रानी को चोट पहुँची, इस ढंग से उसकी ओर देखकर बोली, 'इसमें मैंने बुराई क्या की है बहन ? वे मेरे गुरू हैं और गुरू को किसी भी बात के लिए कहीं इन्कार किया जा सकता है ? इहलोक और परलोक, सबके ही तो वे मालिक हैं, नहीं हैं क्या। और यह तो उन्होंने मुझ पर कृपा ही है ? उन्होंने भी तो कोई गलत काम नहीं किया—?'

लता से अब और नहीं सुना जाता। उसका जैसे दम घुटा जा रहा है। उसे एक बार तो बहुत जोर का गुस्सा आया, इच्छा हुई कि अपने हाथों से उसका सिर तोड़ दे। जरा खून-खराबा होने पर जैसे लता को चैन पड़ेगा। इतना सरल और इतना मूर्ख मनुष्य भी होता है, इस पर जैसे उसे विश्वास नहीं होता ···उसको कुछ कठोर दण्ड देना ही उचित है। कुछ निष्ठुर, कुछ पाशविक दण्ड······

लेकिन कुछ भी नहीं करती। बल्कि लता स्वयं ही कमरे से निकल कर भागी—अन्ध, अबोध, बिना किसी ओर देखे, स्वयं से बिना कोई प्रश्न किए ही। अँधेरे बगीचे से होती हुई पागलों की तरह भागी, उद्देशहीन।

बहुत देर तक इसी तरह घूमने के बाद थकावट की वजह से वह नदी किनारे बैठने के लिये बाध्य हुई।

वह क्या करे ? आत्म-हत्या। सामने ही मटमैला, शीतल और शान्त जल है। परिपूर्ण शान्ति और विश्राम में अन्धकार की तरह स्थिर है।

एक तो गर्मी और ऊपर से दौड़ने की वजह से कपड़े पसीने से तर हो गये हैं, उसके सारे बदन से जैसे आग निकल रही है। इच्छा हो रही है कि वह जल में कूद पड़े। अपनी शान्त देह इस अतल रहस्यमयता में डुबो दे—

पर इस समय लता की जो उम्र है उसमें जीवन की आशावादिता ही प्रबल है। आत्महत्या की इच्छा ज्यादा देर नहीं टिकती। उसकी भी नहीं रही।

तब फिर अब वह क्या करे? घूम-फिर कर यह प्रश्न ही सामने आ जाता है। यहाँ रहना तो अब असंभव है। वह नहीं रह सकती। अब नहीं। आज इस रात के बीत जानेपर कल प्रभात में वह गोस्वामी जी को यह मुँह नहीं दिखा सकती। और न उनकी ओर देख ही सकेगी। अब उसके लिए उन्हें प्रणाम करना तो असम्भव है। लेकिन आमना-सामना होते ही—

हाँ, अब उसको यहाँ से भागना होगा। और अभी ही।

कहाँ? जहाँ भी जगह मिले। नहीं होगा तो सड़कों पर ही भीख माँग लेगी। कुछ भी नहीं होगा तो महरी का काम तो कर ही सकती है।

पर अब यहाँ एक मिनट भी नहीं रहेगी। जाना होगा और वह भी फौरन—अभी। रात को ढाई बजे यहाँ से एक गाड़ी जाती है। उसी में वह चली जायगी। किसी के उठने या जानने से पहले ही।

थकी-मांदी लता ने अपने कमरे की ओर कदम बढ़ाये। रानी नहीं है। शायद उसे वे लोग बुला ले गये हैं। उस वक्त भी गोस्वामी जी के कमरे में रोशनी जल रही थी, बातचीत की अस्पष्ट आवाज भी सुनाई पड़ती है। कोई जैसे धीरे-धीरे सिसकियाँ ले रहा है—

रानी को भी क्या वह अपने साथ यहाँ से ले चले। जबरदस्ती? एक बार उसके दिमाग में यह विचार आता है।

पर यह सम्भव नहीं है, दूसरे ही क्षण समझ जाती है। इसमें बहुत हंगामा है। बहुत ज्यादा शक्ति की जरूरत है—शारीरिक और मानसिक, दोनों ही प्रकार की। लता में इतनी शक्ति नहीं है।

संदूक और बिस्तरा छोड़ देती है। उसका एक छोटा सूटकेस था, उसी में उसने पाँच-छः धोतियाँ, अत्यन्त आवश्यकीय एक-दो चीजें, कुछ

रुपये और सोने की चैन, जो उसके इहलोक का आधार है,—इन सब को रखकर वह चुपचाप चल दी ।

रास्ते में बदमाश उसका पीछा कर सकते हैं, कुत्ते और सियार काटने के लिए दौड़ सकते हैं, और इस घने जंगल में एकाएक किसी जंगली जानवर से सामना हो सकता है—ट्रेन में गुण्डे और लफ़ंगे उसके पीछे लग सकते हैं—इस तरह का कोई भी विचार या आशंका उसे नहीं हुई । सिर्फ उसको अभी यहाँ से चला जाना है, यहाँ से जितनी भी दूर हो, जहाँ भी हो—एकमात्र यह विचार ही उस वक्त उसके मन में सबसे अधिक प्रबल था ।

और कहीं, और कहीं—

९

उसका थका-मांदा चेहरा और विचित्र वेश-भूषा देख कर शान्ति बहन अचम्भे में आ गयीं, 'एकाएक तुम कहाँ से टपक पड़ीं ? इतने सुबह-सुबह ? इस तरह ? बात क्या है ? चल, ऊपर चल।'

उनके कमरे में पहुँच कर पंखे के नीचे कुछ देर बैठने के बाद स्वस्थ हो लता जब उन्हें सारी बातें सुनाने लगी, तो प्रायः आधी बात सुनने के बाद ही शान्ति बहन ने अपने कान बन्द कर लिये।

'चुप रहो, चुप रहो, लता। वे मेरे गुरू हैं—गुरू की निन्दा नहीं सुननी चाहिए। गुरू की निन्दा करना या सुनना दोनों ही पाप है।'

'पर इसमें गुरू की निन्दा क्या है, शान्ति बहन ! ऐसा काम जो कर सकते हैं, उन्हें भी क्या गुरू मानना चाहिये ?'

'देखो लता, अभी तुम्हारी कच्ची उम्र है, जीवन के अनुभव भी कम है। और जरा उम्र बढ़ने पर समझोगी कि इन सब बातों के लिए दूसरों को बहुत कुछ भला-बुरा कहा जा सकता है, धिक्कारा जा सकता है। लेकिन जब स्वयं हमारे सामने प्रलोभन उपस्थित होता है तब ही हम यह जान सकते हैं कि उसको संयत करना कितना कठिन है। तुमने तो पुराण पढ़े हैं न, उसमें कितने बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों के पदस्खलन की कथायें नहीं पढ़ीं ? और तो और विश्वामित्र जैसे महर्षि की तपस्या भंग हो गयी—मेनका को देखकर। लेकिन इससे मनुष्य की महानता कम नहीं होती, यदि वह स्वयं को फिर से सम्भाल ले। ये कथाएँ

हमें शिक्षा देने के लिए ही हैं ताकि हम मनुष्य को गलत न समझें।'

लता कुछ देर चुप बैठी रही। इन लोगों की यह युक्तिहीन अन्ध भक्ति उसे अच्छी नहीं लगती। उसका मन यह मानने को तैयार नहीं होता। उसने बहुत धीरे-धीरे कहा, लेकिन फिर भी ऐसे ही व्यक्ति को गुरू मानकर भक्ति या पूजा कैसे करूँ ?'

'यह सोच-विचार करने का हमें अधिकार नहीं है भई। पहले उनकी परीक्षा ली जा सकती थी लेकिन जब एक बार उन्हें गुरू के रूप में मान लिया तब फिर विचार नहीं किया जा सकता। यह महापाप है।...इसके अलावा लता जरा यह भी सोचो कि उन्होंने कुल मिलाकर तुम्हारा उपकार और भलाई ही ज्यादा की है या नहीं ?...'

इसमें कोई शक नहीं। इसके बाद लता को अपना सिर झुका लेना पड़ता है। काफी सोच-विचार कर उसने देखा कि, वाकई उनके प्रति वह कृतज्ञ ही है—

बात वहीं खत्म हो गयी। शान्ति ने कहा, 'खैर, जाने भी दे। जब आ ही गयी हो तो फिर यहाँ आराम से रहो। मैं उन्हें एक पत्र लिख देती हूँ। तू अभी नासमझ है, तेरे आदर्शवाद में जरा सा धक्का लगते ही सनक में यह काम कर बैठी। वे इसका बुरा नहीं मानेंगे।'

इतने दिनों बाद यहां आकर जैसे लता की जान में जान आयी। मानो इतने दिनों तक वह जीवन के पिछली ओर थी, अब फिर जिन्दगी के सामने आकर खड़ी हो गयी है। रुका हुआ, बँधा हुआ, स्थिर नहीं— बल्कि उसके चारों ओर गतिशील जीवन का स्पर्श हो रहा है।

लेकिन फिर भी जी भरकर वह इस शहर का उपभोग नहीं कर पाती। वह दूसरे के सिर पर बोझ है, यह वह कैसे भूल सकती है। होस्टल में जगह नहीं है, इसलिये शान्ति बहन के कमरे में ही एक ओर उसे आश्रय लेना पड़ा है। शान्ति बहन ने कुछ नहीं कहा—पर भोजन का एक-एक कौर उसके गले में अटकता है, काँटे की तरह चुभता है।

इस तरह और कितने दिन रहना पड़ेगा ?

शान्ति बहन से हर रोज कहती है, 'आपके होस्टल में रही हुई अनेक छात्रायें तो आज स्कूलों में टीचर हैं, उनमें से ही किसी एक के नाम पत्र लिख दीजिये न, बच्चों की क्लास में तो मैं पढ़ा ही सकती हूँ। क्या कहीं भी कोई मास्टरी नहीं मिलेगी ?'

हार कर शान्ति बहन को चिट्ठियां लिखने बैठना पड़ता है। लेकिन उन्हें आशा बहुत कम ही है। बल्कि उसे समझा देती हैं कि इस तरह कोई काम नहीं होता। डाक में चिट्ठियां भेजने के बाद से लता उत्सुक हो जाती है और भगवान से प्रार्थना करती है। वे क्या कभी किसी दिन उसकी मदद नहीं करेंगे ! बीच-बीच में मन ही मन माँ की याद करती है, माँ उसकी हालत अवश्य समझ रही होंगी। क्या वे भी उसके लिए कुछ नहीं कर सकतीं ? बच्चों की तरह वह सोचती है—

लेकिन एक दिन बहुत ही अप्रत्याशित रूप से लता का भाग्योदय हुआ। एक पत्र का उत्तर आया है। इस शहर के ही एक उपनगर में छोटी-छोटी बालिकाओं का एक प्राइमरी स्कूल है—उसके लिये ही एक हेडमिस्ट्रेस चाहिये। पच्चीस रुपया महीना मिलेगा। लेकिन हाँ, मन्त्री महोदय के मकान में ही रहने के लिए एक कमरा मुफ्त मिल जायगा, और सुबह के वक्त यदि उनके नाती-पोतों को पढ़ा दिया करे तो और भी पाँच सात रुपया महीना मिल जायगा।

शान्ति बहन ने चिन्तित होते हुए कहा, 'इतने कम वेतन में कैसे गुजर-बसर कर सकोगी ? और फिर दूसरे के मकान में रहना। कौन कैसा आदमी है, यह जानना-पहचानना तो मुश्किल है न—'

लता को तो जैसे मुंह माँगी मुराद मिल गयी। वह किसी भी प्रकार की आशंका या सन्देह को स्थान देने के लिये तैयार नहीं है।

'आप जरा भी चिन्ता-फिक्र न करें शान्ति बहन, मुझे वहाँ नियुक्त करा ही दीजिये।'

मन्त्री महोदय की पुत्री किसी जमाने में इस होस्टल में रही थी। इस कारण ही थोड़ी-बहुत जान-पहचान है। अतः नौकरी मिलने में

कोई विशेष दिक्कत नहीं हुई। गोस्वामी जी को पत्र द्वारा सूचित कर दिया गया—वे भी मन्त्री महोदय से परिचित हैं। उन्होंने भी उनके नाम एक चिट्ठी लिख दी।

इतने दिनों बाद लता ने आराम का सांस लिया। स्वतन्त्रतापूर्वक, अपने पैरों पर—यदि सिर्फ एक वक्त ही खाने को मिले, बराबर एक ही कपड़ा पहनना पड़े, तो भी अच्छा है।

लता ने नये सिरे से नया जीवन शुरू किया। इतने दिनों बाद उसे अपनी चेन बेचनी पड़ी। एक खाट खरीदी, कुछ बर्तन-भांडे भी लेने पड़े और थोड़ी-बहुत दैनिक आवश्यकता की चीजें। नौसिखिये हाथों से खाना ठीक से नहीं बनता—शान्ति बहन आकर उसे थोड़ा-बहुत सिखा गयीं। कहीं वह खाना न बनाये, इसलिये शान्ति बहन ने भी पहले दिन शाम को उसी के यहाँ भोजन किया।

मन्त्री महोदय का मकान बहुत बड़ा है। मकान के चारों ओर बगीचा है। लेकिन लता को जो कमरा दिया गया, वह सिर्फ उत्तर की ओर खुला हुआ था—बाकी तीनों ओर से बन्द है। किसी जमाने में यह शायद नौकरों के लिये बनवाया गया था, पर अब बगीचे के एक कोने में लोहे की चादरें डलवाकर उनके लिये अलग कमरे बना दिये गये हैं। पर एक सुविधा जरूर है, वह यह कि यह हिस्सा चूंकि मकान के एकदम पीछे की ओर है, इसलिये मकान मालिक की दृष्टि से यह सम्पूर्णतः परे रह सकती है। यहाँ पास ही में एक अलग बाथरूम भी है, लेकिन रसोई बनाने की जगह नहीं है। रसोई कमरे में ही बनानी पड़ती है। यह सब गौर कर शान्ति बहन ने एक 'कुकर' खरीदने की सलाह दी, ज्यादातर उसमें खाना बनाया जा सकता है। जिस दिन और कुछ खाने की इच्छा हो या छुट्टी हो, उस दिन अँगीठी पर बनाओ।

मन्त्री अम्बिका प्रसाद शरीफ आदमी हैं। वकील हैं। अपनी माँ के नाम से यह स्कूल खोला है। हालांकि एक स्कूल कमेटी है, लेकिन जो कुछ होता है वह उनकी इच्छा से ही होता है, छोटा-सा स्कूल है, लड़कियों की संख्या भी कम है—लेकिन लता को इन सब बातों का कोई अनुभव नहीं है। वह हैडमिस्ट्रेस है—उसकी भी कुछ विशेष जिम्मेदारियाँ हैं। यह सब देख-सुनकर लता तो जैसे अगाध जल में डूब गयी। पर अम्बिका बाबू उसे सस्नेह सब कुछ समझा देते हैं—बहुत धैर्य और शान्तिपूर्वक। पत्र-व्यवहार करने का उसे अभ्यास नहीं था, अंग्रेजी में गलती होती हैं—उन्हें भी अम्बिका प्रसाद सुधार देते हैं। हिसाब का रजिस्टर कैसे लिखना पड़ता है, यह भी बताते हैं। कभी-कभी मीठी डाँट-फटकार भी सुनाते हैं, पर उसमें भी स्नेह रहता है।

लता को वे अच्छे लगते हैं। वह उनसे चाचा जी कहती है।

शुरू-शुरू में लता को नया काम और नयी जिम्मेदारी बुरी नहीं लगी। छोटी-छोटी लड़कियों के उज्जवल और भोले-भाले मुखड़े उसे चारों ओर से घेरे रहते। हालांकि हर समय बहुत बक-झक करनी पड़ती है, लेकिन तो भी अच्छा लगता है। मुसीबत होती है अम्बिका प्रसाद की नातनियों के साथ—बड़े बाप की दुलारी बेटियां हैं, बेहद चंचल और असभ्य, पढ़ाई के नाम पर तो वे कोसों दूर भागती हैं। उन्हें सँभालने में उसे बहुत परेशानी होती है, चिढ़ भी जाती है। कभी-कभी तो उसे इतना गुस्सा आता है, ऐसी इच्छा होती है कि उन्हें खूब पीटे, मार-मारकर अधमरा कर दे। पर हिम्मत नहीं होती—इतने दिनों बाद निरापद आश्रय—यहाँ से यदि जाना पड़ा तो फिर और कहाँ खड़ी होगी।

लेकिन यह गनीमत है कि महीने में आठ-दस दिन ही वे पढ़ने आती हैं, किसी न किसी बहाने छुट्टी ले ही लेती हैं। शुरू-शुरू में लता उनकी

खोज खबर लेने जाती थी, उन्हें जबरदस्ती पकड़ कर लाती थी---लेकिन अब उसने अपने कर्त्तव्य को संयत कर लिया है। उनके न आने पर ही शान्ति रहती है।

लेकिन लड़कियां नहीं आयीं तो क्या हुआ, लड़कियों का बाप यानी अम्बिका प्रसाद का बड़ा लड़का बनवारी उपसर्ग की तरह उनकी जगह वहां पहुँच जाता है। यह बात नहीं कि लड़कियों के रहने पर वह नहीं आता, तब भी आता है, 'क्योंकि, आपकी ये छात्रायें कुछ पढ़ती-पढ़ाती भी हैं ? नहीं पढ़ती न ?' या 'देखता हूँ कि आपको ये बहुत परेशान करती हैं, बहुत चंचल हैं। ऐ, शैतानी क्यों करती है ?' इस तरह की बातें बनाने के बहाने आकर बैठ जाता है और बेमतलब की बातें कर चला जाता है। पर सबसे ज्यादा मुसीबत तो तब होती है जब लड़कियां नहीं आतीं। लता यह अच्छी तरह जानती है कि इस शख्स को मालूम है कि आज लड़कियां नहीं आयी हैं तो भी बनते हुए वह विस्मय प्रकट करता है, 'ऐं, आपकी छात्राएँ ? नहीं आयी ?···क्यों, कहां गयी ? ··ओफ, इन्हें तो स्वयं सरस्वती देवी भी नहीं पढ़ा सकती।'

फिर निमन्त्रण की अपेक्षा किये बिना ही उसकी खाट पर बैठ जाता है। बहुत-सी बेकार बक-बक करने के बाद कहेगा, 'यह क्या बना रही हैं ? ओ, आलू हैं ? जरा से दीजिये तो। बहुत दिनों से गर्म और तले हुए आलू नहीं खाये हैं !' अथवा 'कुछ ख्याल न करें तो एक प्याला चाय चाहिये ?···वास्तव में, आप बहुत अच्छी चाय बनाती हैं ! अच्छी चाय बनाने का दंड तो भुगतना ही पड़ेगा।···नौकरों के हाथ की चाय पीते-पीते जी भर गया है—'

चाय का प्याला लेते हुए बनवारी उसकी अँगुलियों को जान-बूझकर ही छूता है। कुछ दिनों बाद लता ने अपने हाथ से देने की बजाय चाय का प्याला बगल में रखना शुरू किया तो उसने और भी आगे बढ़कर चाय लेने के बहाने हाथ छूना शुरू किया।···बनवारी चालीस साल से कम का नहीं है, उसके बहुत सारे बच्चे हैं। लेकिन तो भी इस उम्र में

उसकी इन हरकतों से लता को बहुत गुस्सा आता है, पर डर के मारे कुछ कह नहीं पाती।

लेकिन बहुत दिनों तक बिना कहे चला भी नहीं। लता ने गौर किया कि बड़ी बहू यानी छात्राओं की माँ ने इन लोगों की गति-विधि पर नज़र रखने के लिए अपनी महरी भेजना शुरू कर दिया है। हर तरफ से मौत है—लता की ऐसी ही हालत है। अन्त में लाचार होकर लता को मुँह खोलना ही पड़ा।

उस दिन भी बनवारी बिना किसी सबब के आकर बैठ गया था। चाय पी चुका, पर फिर भी टलने का नाम नहीं। जान कर ही उसकी ओर पीठ किये लता रसोई बना रही थी, उसकी बातों का कोई जवाब भी नहीं दे रही थी। लेकिन उसकी इस बेरुखाई से बनवारी के उत्साह में कोई कमी नहीं पड़ी। एकाएक उठा और उसके सामने जा खड़ा हुआ। बोला, 'देखिये, बुरा न मानियेगा। अगर मैं चित्रकार होता तो आपकी एक तसवीर जरूर बनाता। वास्तव में, आप रसोई बना रही हैं, आग की गर्मी से आपका गोरा-गोरा मुँह लाल हो गया है, ललाट पर पसीने की बूंदें चमक रही हैं, इसके साथ ही दो-चार बाल भी मुँह पर आ गये है, चम्पा की कली जैसी आपकी सुन्दर अंगुलियाँ काले कौंचे के साथ तवे पर उठ-चढ़ रही हैं, मानो कलाकार की साकार कल्पना—Even worthy of Raphel.'

लता का चेहरा और भी लाल हो गया। आज वह अपना मिजाज सम्भाल नहीं सकी। कलछी फेंककर वह उठी और प्रायः रुँधी हुई आवाज में बोली, 'देखिये, बहुत दुःख भोगने के बाद आपके यहाँ शरण मिली है। अगर यह आश्रय भी न रहा तो फिर मेरे लिए कहीं खड़े रहने की भी जगह नहीं है। आप क्या चाहते हैं कि मैं दर-दर की ठोकरें खाती फिरूँ—मैं आत्महत्या करने के लिए मजबूर होऊँ?'

'यह क्या बात?···आप क्या कहती हैं···मैं · मैं तो' जैसे बनवारी की समझ में नहीं आता कि क्या कहे।

'आप इतने नासमझ तो नहीं हैं कि मेरे कहने का मतलब ही न समझें। आपके घर की औरतों तक की यह धारणा हो गयी है कि मैं आपको गुमराह कर रही हूँ।'

'लेकिन मैंने ऐसा कभी कुछ नहीं समझा—एम वेरी सॉरी-वाकई मुझे बहुत दुःख है—'

एक-एक कदम पीछे हटाते हुए बनवारी चला गया।

इसके बाद से उसका आना कुछ कम हुआ—हालांकि सम्पूर्णतः बन्द नहीं हुआ।

लेकिन इस दुनिया में सिर्फ बनवारी अकेला नहीं है। असंख्य मांस-लोलुप पुरुष हैं। उन सबकी लोलुप और ललचायी दृष्टि से, मनुष्य के रूप में इन सब पशुओं से अपनी रक्षा करते-करते लता जैसे बहुत थक गयी है। उसकी समझ में नहीं आता कि उन लोगों की यह भूख, इतनी अधिक लालसा किस लिये है। लता वाकई विस्मित होती है।

स्वयं अम्बिकाप्रसाद भी जब कभी आते हैं तो ठीक उसकी बगल में ही आकर बैठते हैं। कभी-कदाच हँसी-मजाक भी कर लेते हैं। लता को यह भी अच्छा नहीं लगता, पर मुँह से कुछ नहीं कहती।

अम्बिका बाबू का एक क्लर्क है—अगर जवान नहीं तो प्रौढ़ भी नहीं है। स्कूल के सम्बन्ध में एकाएक उसकी दिलचस्पी भी बहुत बढ़ गयी है। उसका बार-बार आना-जाना और बहुत ज्यादा घनिष्ठता बढ़ाने की कोशिश से भी उसे चिढ़ है। बनवारी का छोटा भाई श्यामलाल एम० एस-सी० पास करने के बाद कुछ काम सीखने विलायत गया था। लता के यहाँ आने के तीन महीने बाद ही वह विलायत से लौटा और आते ही लता को पढ़ाने के लिए बेचैन हो उठा। सौभाग्य की बात कि घर की औरतें समय रहते चेत गयीं और उन्होंने श्यामलाल को आगे बढ़ने से रोक लिया—और लता की जान बची।

अब मानो लता बहुत थक गयी है। सुबह से शाम तक खटना, स्कूल के सैकड़ों काम, अपना खाना बनाना, ट्यूशन—और इस पर भी आर्थिक अभाव। एक-एक पैसा हिसाब से खर्च करना पड़ता है—इस जीवन का कोई अर्थ ही लता की समझ में नहीं आता। कभी-कभी उसके मन में विचार उठता है कि इस जीवन को इस तरह आगे बढ़ाने की क्या जरूरत? इस प्रकार जीवित रहने में क्या सार्थकता है। दरिद्रता से द्वन्द्व है, मनुष्य की लालसाओं से द्वन्द्व है—प्रतिदिन, हर समय, भीतर और बाहर—सब जगह। किसी सवारी में चढ़ने में भी उसे घृणा होती है। लेकिन और उपाय भी क्या है?

कभी-कभी उसकी यह भी इच्छा होती है कि अपने शरीर को जान-बूझ कर विकृत कर ले, विकलांग बना दे। सुख से न सही, शांति से तो रह सकेगी। पर क्या कोई वास्तव में ऐसा कर सकता है? खुद सोच-कर खुद ही सिहर उठती है।

इसके अलावा, यह सोचकर उसे सबसे ज्यादा दुःख होता है कि वह एकदम अकेली है, सम्पूर्णतः असहाय है।

अपने हृदय की वेदना, मन का बोझ किसी से कह-सुन कर हल्का करने के लिए भी एक व्यक्ति की जरूरत होती है। भले ही वह सहानुभूति न दिखाये, लेकिन कम-से-कम सुनेगा तो सही। इससे कुछ-न-कुछ भार हल्का तो होता ही है।

अकेली—एकदम अकेली। सारे जीवन उसे अकेली ही रहना होगा। परामर्श दे, उत्साह बढ़ाये, जिंदगी के सफर में उसका हाथ बढ़ाये—ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं। बीमार होने पर किसी का कोमल हाथ उसके ललाट का स्पर्श करेगा—यह तो दुराशा-मात्र है। कोई भी उसकी माँ की तरह स्नेह से नहीं पूछता—'क्योंरी, आज तेरा मुँह इतना उतरा हुआ क्यों है? तबियत कुछ खराब है?'

किसी-किसी दिन तो उसे यह एकाकीपन बहुत खलता है। इच्छा होती है कि किसी से जबरदस्ती ही झगड़ा करे—ऐसा भी होता तो

कुछ-न-कुछ राहत मिलती ही। अपने आप ही वह खिलखिला कर हँसे ? यूँ ही बेमतलब चीख-पुकार मचाये ?

फौरन ही वह डर जाती है। वह कहीं पागल तो नहीं हो रही है ?

कभी-कभी छुट्टी के दिन दोपहर को वह अपने घर से चली जाती थी। सम्पूर्णतः उद्देश्यहीन भाव से। इन दिनों शान्ति बहन के यहाँ भी जाने की उसकी इच्छा नहीं होती थी। बाजारों में या पार्क में अकेली घूमती अथवा गंगा किनारे जाकर चुपचाप बैठी रहती। गंगा में कितने बजरे चले जा रहे हैं, किसी नाव पर भंग-बूटी छन रही है, कहीं बच्चे कागज की नाव बना कर पानी में छोड़ रहे हैं। तिरछी नजरों से उसे देखकर कोई नाव वाला फिल्मी गीत छेड़ देता। कहीं कोई नहा रहा है तो दूसरा तैर रहा है। सब कुछ होते हुए भी यह एक मधुर और अलस छबि है। लता को यहाँ अच्छा लगता है। लेकिन यहाँ बहुत देर तक बैठना भी संभव नहीं होता। वहाँ भी पुरुष की वासना उसका पीछा करती है। अन्धकार होने से पहले ही उसे उठना पड़ता। एक-दो बार वह प्रायः मुसीबत में भी पड़ गयी थी। लेकिन अब वह किसी बात की परवाह नहीं करती।

दीर्घ, आनन्दहीन दिन, आशाहीन, निरानन्द और वैचित्र्यहीन।

किसी-किसी दिन रात को सोते समय लता अपने आप ही बेमतलब रो पड़ती है, बहुत देर तक रोती रहती है।

१०

शायद दिसम्बर का महीना था। ऐसे ही एक छुट्टी के दिन वह गंगा के किनारे बैठी हुई थी। एकाएक उसकी जल में उतरने की जबरदस्त इच्छा हुई। शीत है, पर तो भी जैसे गर्मी से उसके कान जल रहे हैं। बर्फ जैसे इस शीतल जल में डुबकी लगाने की उसकी बेहद इच्छा हुई।

क्रमश: उसकी यह इच्छा विवेक-बुद्धि और तर्क-वितर्क की समस्त सीमा पार कर दुर्दमनीय वेग से उसे जल की ओर आकर्षित करने लगी। और अपने जूते उतार कर वह पानी में उतर गयी।

बहुत देर तक पानी में रही। शायद वह और भी कुछ देर रहती, यदि चारों ओर के मल्लाहों की गिद्ध-दृष्टि उसे चौंका न देती। एक सनक में आकर वह उतर पड़ी थी, लेकिन जब निकलने लगी तो उसे अपनी बेवकूफी का ख्याल हुआ। बदन में चिपके हुए गीले कपड़ों में सहस्त्र कौतूहली आँखों के सामने बाहर नहीं निकला जा सकता, शर्म आती है। हाथ में जूते लेकर चलने में तो और भी शर्म आयेगी। अत: पहनने पड़े। शरीर और कपड़ों के पानी से गीले होकर जूते चिप-चिप करने लगे। कैसे जाय, यह भी एक समस्या है। इस हालत में बस में नहीं जाया जा सकता। पैदल जाना तो और भी असम्भव है।

तो फिर !

उसने एक तांगा बुलाया। लेकिन गद्दी खराब हो जाने के डर से

उसने नहीं बैठाया। उसको ऊपर से नीचे तक एक बार गौर से देखकर बोला, 'माफ करें बहिन जी, मेरी गद्दी बिलकुल खराब हो जायगी,' और वह चला गया।

अन्त में ज्यादा पैसे का लालच देकर एक रिक्शा ही करनी पड़ी। शीतकाल की हवा में गीले कपड़े पहने काफी रास्ता तय करने की वजह से कपड़े कुछ सूख जरूर गये, पर उसको जो कँपकँपी चढ़ी तो फिर वह न रुकी।

घर पहुँच कर एक कप चाय बनाकर पीने की शक्ति भी उसमें नहीं रही। किसी तरह कपड़े बदले और रजाई ओढ़कर सो गयी। उत्तर की ओर से खुला रहने के कारण जाड़े के दिनों में कमरा बहुत ठंडा रहता है, नाम को भी धूप नहीं आती। सारी रात वह ठिठुरती रही, काँपती रही। दूसरे दिन सुबह उसकी समझ में आया कि उसे बुखार हो गया है।

दो-दिन तक अम्बिकाप्रसाद ने देखभाल की। तीसरे दिन बुखार बहुत बढ़ गया, बुखार की तेजी के कारण लता बेहोश हो गयी। अम्बिका बाबू ने यह हालत देखी तो उसे अस्पताल में भर्ती करा आये।

शान्ति बहन को उस समय खबर देने की याद उन लोगों को नही रही। जब उन्हें खबर मिली तब तक अस्पताल में इलाज शुरू हो चुका था। यह देख कर उन्होंने भी व्यर्थ में झंझट बढ़ाना उचित नही समझा—प्रायः हर दूसरे-तीसरे दिन आकर खबर ले जाती थीं।

निमोनिया हुआ था, ठीक होने में देर लगेगी। बुखार कुछ कम होने पर लता ने अपने चारों ओर देखा। अस्पताल के बारे में शुरू से ही उसके कुछ विचित्र खयाल थे। उसी अस्पताल में उसे एक दिन रहना होगा, यह वह क्या जानती थी।...उसको खुद ही जैसे कुछ आश्चर्य होता है। कई दिनों से रहते हुए अब कुछ आदत पड़ गयी है। लेकिन हां, दूसरी मरीजाओं को देखकर कुछ बुरा जरूर लगता है। उनकी चीख-चिल्लाहट और बीमारी की वजह से पीले पड़े हुए मुख की ओर देखकर सिर-दर्द होता है। आँखें बन्द कर पड़े रहने की लता कोशिश करती है।

उसे नर्स बहुत अच्छी लगती है। लेकिन जब कभी वह उनमें हृदय-हीन उपेक्षा का भाव देखती है तब जैसे कुछ विस्मित हो जाती है। ये ऐसी क्यों हो जाती हैं ? क्या इनमें जरा भी दया नहीं है। फिर उसे अपने मन में ही इसका जवाब मिलता है— रोगियों को देखते-देखते उन का हृदय कड़ा पड़ गया है, दुःख अथवा सहानुभूति के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है।

उसे वह नौजवान डाक्टर भी बहुत अच्छा लगता है।

उसका नाम नरेश है, लता को इस बीच यह मालूम हो गया है। रूद्रपुर का रहने वाला है। अभी डाक्टरी पास करके यहाँ छः महीने की ट्रेनिंग ले रहा है। सुन्दर, स्वस्थ और श्याम वर्ण। मुख पर हमेशा हँसी की एक पतली-सी रेखा जैसे उसमें व्यंग छिपा हुआ है। उस वार्ड की अन्य मरीजाएँ भी उसको देखकर मानो सजीव हो उठती हैं, उसके आगमन की प्रतीक्षा करती रहती हैं। कारण, वह हर मरीज से मीठी बातें करता है, सुख-दुःख पूछता है और एक विचित्र प्रकार की सान्त्वना देकर चला जाता है।

एक दिन लता से उसकी बातचीत इस तरह शुरू हुई। उसके पलंग के पास खड़े हुए बोला, 'क्यों, आज आपकी तबियत पहले से कुछ अच्छी मालूम पड़ती है ? चेहरे पर भी कुछ चमक है !'

फिर बगल में रखे हुए स्टूल पर बैठ गया, 'पर आपको एकाएक निमोनिया क्यों और कैसे हो गया ? ऐसे तो देखने में आप काफी हृष्ट-पुष्ट ही जान पड़ती हैं।'

बीमारी के कारण की याद आते ही लता का मुख शर्म के लाल हो गया। उस शर्मीले मुँह की सुन्दरता देखते हुए नरेश ने कहा, 'कोई बात नहीं, मैंने सुना है, सब सुना है। . दिसम्बर के जाड़े में गंगा-स्नान और फिर गीले कपड़े पहने हुए ही घर लौटना- वाकई, आपने भी कमाल किया।'

इसके बाद यह देखकर कि लता और भी अधिक सकुचा रही है,

वह फौरन उठ बैठा, 'अच्छा, अब आराम कीजिये। मैं जाता हूँ।'

उस दिन से प्रायः हर रोज ही नरेश उसके पास दो-चार मिनट के लिए बैठता। तबियत के बारे में पूछता, कभी-कदाच हँसी-मजाक भी कर लेता। ऐसे ही धीरे-धीरे उसने लता का पता, पेशा, और कौन-कौन है आदि प्रायः सभी बातें जान ली।

जिस दिन बुखार बिलकुल उतर गया उस दिन उसके आते ही लता ने प्रश्न किया, 'तो फिर आज मुझे छुट्टी मिल जायगी न ?'

'आज ही ? क्यों, इतनी जल्दी क्या है ? यह अस्पताल पसंद नहीं ?'

लता ने कुछ सकुचाते हुए कहा, 'नहीं—यह बात नहीं, जब ठीक हो गयी हूँ तो चला ही जाना चाहिये।'

'देखिये, जाने के लिए जल्दीबाजी मचायेंगी तो फिर फौरन ही लौटकर भी आना पड़ सकता है।...इससे अच्छा है कि अभी दो दिन और ठहर जाइये। सम्पूर्णतः स्वस्थ होकर जाइये।...फिर हमारे दर्शन करने की जरूरत नहीं पड़ेगी।'

दर्शन करने में तो कोई नुकसान नहीं है—लेकिन हाँ, यह जरूर चाहती हूँ कि फिर यहाँ लौटकर न आना पड़े।'

'क्यों ? यहाँ नहीं आयेंगी तो फिर हमारे दर्शन कैसे करेंगी, कहिये ?'

'वाह, यह खूब रही। क्या आप लोगों का कोई व्यक्तिगत जीवन नही है ? आप यदि किसी दिन मेरे यहाँ पधारने की कृपा करें तो दर्शन हो जायेंगे !'

'हाँ-हाँ, व्यक्तिगत जीवन है क्यों नही। यदि आप आने की आज्ञा दें तो यह मेरा सौभाग्य है।'

'वाह, आज्ञा की क्या बात—आपने इतनी मेहनत से इलाज किया—'

'इसमें ऐसी कौनसी खास बात है ! यह तो हमारा कर्त्तव्य है।'

अस्पताल से चलते वक्त लता ने फिर एक बार याद दिला दी, 'तो

फिर आप एक दिन आने का कष्ट कर रहे हैं न ?'

'निश्चय ही। चाय पिलाने का जब आपने लालच दिया है तब फिर भला नहीं आऊँगा। लेकिन यह तो आप देख ही चुकी हैं कि यहाँ से हमें छुट्टी मिलना कितना मुश्किल है। लेकिन तो भी एक दिन में जरूर आऊँगा।...होशियारी से रहियेगा, यह बहुत खराब बीमारी है—कहीं फिर 'रिलेप्स' कर गया तो खैर नहीं !'

फिर उसके साथ-साथ अस्पताल के दरवाजे तक आया। बोला, 'लेकिन आप जायेंगी किसमें ?'

इधर-उधर देखते हुए लता ने कहा, 'एक रिक्शा कर लेती हूँ।'

'रिक्शा ? रिक्शा में इतनी दूर ? चलिये, मैं मोटर का प्रबन्ध कर देता हूँ। यहाँ मेरी जान-पहचान का एक मोटर वाला है, वह बहुत सस्ते में ही पहुँचा देगा।'

लेकिन प्रबन्ध करने की जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि उसे लाने के लिए अम्बिकाप्रसाद ने अपनी पुरानी फोर्ड मोटर भेज दी थी। उसमें उसे बिठाकर दरवाजा बन्द करते हुए नरेश ने कहा, 'अच्छा, तो अब आप जाइये, लेकिन बहुत सावधानी से रहियेगा ! यहाँ फिर न आना पड़े।'

लता ने मानो उस दिन दोपहर को ही उसके आने की प्रतीक्षा की थी। तीन बजे से ही उत्सुक होकर बगीचे के कंकरीले पथ पर उसकी निगाहें टिकी हुई थीं। पहले यह बात वह खुद नहीं समझ पायी थी—जब सन्ध्या बीत गयी और रात हो गयी तो उसने अपने हृदय में आशा-भंग जैसी वेदना का अनुभव किया, मन ही मन यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हुई कि इतनी देर से वह नरेश के आगमन की ही प्रतीक्षा कर रही थी।

नरेश उस दिन नहीं आया। दूसरे दिन भी नहीं आया। लता जैसे

कुछ रूठ गयी। फिर अन्त में जैसे स्वय को ही समझाने की चेष्टा करती है, नरेश क्यों आयगा ! वह डाक्टर है, अस्पताल में उस जैसी अनेक मरीजाओं को उसे रोज ही देखना पड़ता है, मीठी बातें भी करनी ही पड़ती हैं। इससे ज्यादा और उसका क्या अधिकार है ?···सज्जनता की खातिर उसने कह दिया होगा—इसका यह मतलब नहीं कि वह वास्तव में आयेगा ? क्यों ?

बल्कि मन की इस उत्सुकता के लिए लज्जित होना ही उचित है। लता अपने मन को समझा-बुझाकर जबरदस्ती शान्त करती है।

लेकिन तीसरे दिन उस कँकरीली सड़क पर जूते की आवाज सुनायी दी।

'कहिये, कैसी हैं ? अब तो कोई तकलीफ नहीं है ?'

'आप भी खूब हैं।' रूठे हुए स्वर में यह बात उसके मुँह से अपने आप ही निकल पड़ी, 'खूब आये !'

'अरे वाह, यह आया तो हूँ।' कुछ विस्मित होकर नरेश ने कहा, 'फौरन ही उस दिन टपक पड़ता तो आप क्या सोचतीं, यही समझतीं न कि जैसे मैं निमन्त्रण की बाट जोह रहा था।'

लता के कमजोर पीले मुँह पर जैसे किसी ने लाल रंग डाल दिया, 'चलिये, आप भी क्या कहते हैं !'

फिर अपनी शर्म छिपाने के लिए जल्दी से बोली, 'बैठिये-बैठिये, अभी आपके लिए चाय बनाती हूँ।'

'ऊँहूँ-ऊँहूँ', नरेश ने बाधा दी, 'इस कमजोरी में चाय बनायेंगी, रहने दीजिये। फिर किसी दिन पिला दीजियेगा।'

'नहीं, नहीं। एक कप चाय बनाने में ऐसी कौनसी मेहनत पड़ेगी। आज भी अम्बिका बाबू ने अपने यहां से ही खाना भिजवा दिया था, पर मैंने निश्चय किया है कि कल से खुद ही रसोई बनाऊँगी। बेमतलब के लिए किसी का एहसान क्यों लूँ ?'

स्टोव जलाकर थोड़ी ही देर में लता ने चाय बना दी। नरेश

उसकी खाट पर ही बैठ गया, चश्मा उतारकर हाथ से घुमाते हुए काम मे लगी हुई लता को एकटक देखता रहा। प्रशंसा या अकारण वाचालता नही दिखायी, यहाँ तक कि उसकी किसी भी प्रकार की कोई तारीफ या बड़ाई करने की चेष्टा नही की। इससे लता मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई।

और भी उसने यह गौर किया कि उसके हाथ से चाय का प्याला लेते हुए उसका हाथ छूने की नरेश ने कोई चेष्टा नही की, सहज भाव से ही दूसरी ओर से तश्तरी पकड़ ली। अर्थात् सिर पड़कर घनिष्ठता बढ़ाने के लिए उसकी ओर से कोई हरकत नही हुई।

चाय पीने के बाद दो-चार मामूली बाते कर नरेश उठा।

'फिर आयेगे न ?'

दरवाजे पर खड़े-खड़े ही शान्त और स्थिर दृष्टि से उसे देखते हुए नरेश ने कहा, 'आज्ञा है ?'

'हाँ, है क्यो नही।'

'आप कुछ खयाल तो नही करेगी !'

नही, नहीं। इसमे खयाल करने की क्या बात है !'

इसके पश्चात तीन दिन बाद नरेश फिर आया। इन तीन दिनो मे ही लता जैसे निराश हो गयी थी। वह फिर आयेगा, मानो इसकी उसे आशा न थी। तो भी आज उसने स्वय को सतर्क रखा, किसी भी प्रकार की कोई व्याकुलता प्रकट नहीं होने दी। स्वाभाविक रूप से ही कहा, 'आइये।'

उस दिन नरेश ने खुद ही कैफियत दी। बोला, 'अस्पताल से छुट्टी मिलना भी एक मुसीबत है। कल ही आना चाहता था, पर फुरसत ही नही मिली।'

इसके बाद नरेश बीच-बीच में आने लगा। रोज नहीं, एक-दो दिन छोड़कर। किसी दिन विशेष निमन्त्रण होने पर लगातार दो दिन भी आ जाता। नहीं तो वह अपने आप नहीं आता।

लता को नरेश का साहचर्य विचित्र लगता है। अधिकांश समय ही वह चुप रहता है। पैर ऊपर उठाकर नरेश आराम से बैठ जाता है, चश्मे की कमानी पकड़कर घुमाता रहता है। हाँ, उसकी ओर एकटक देखता रहता है, लेकिन उस दृष्टि में न कोई लालच होता है और न कोई प्रशंसा ही। कभी-कभी हँसी-मजाक भी करता है, लेकिन बातें कम ही करता है। फिर भी लता को ऐसा लगता है कि उसके प्रति नरेश की सच्ची सहानुभूति है। भीतर ही भीतर समझने की उसमें एक अद्भुत शक्ति है, इसीलिए तो बिना बातें किये ही वह सब कुछ अनुभव कर सकता है, उसे अनुभूति हो जाती है। इस कारण ही शायद लता को उसके सामने किसी प्रकार की लज्जा या संकोच नहीं होता। अपने लिए वह बैठी-बैठी खाना बनाती रहती है। कभी कोई अच्छी सब्जी बनाती है तो उसे भी खाने को देती है। पर इसमें भी नरेश तारीफ के पुल नहीं बाँधता। सिर्फ इतना ही कहता है, 'आप क्या हमारे होस्टल के रसोइये को भगाना चाहती हैं।'

विस्मित होकर लता पूछती है, 'क्यों ?'

'ऐसा स्वादिष्ट भोजन खाने के बाद क्या उसकी बनायी हुई आधी कच्ची-पक्की रसोई पसन्द आयेगी ? उसको भगा देने की इच्छा नहीं होगी ?' बस, इतना ही। यह कहकर मन्द-मन्द मुस्कराया।

मानो लता उससे कुछ भी गुप्त रखने की आवश्यकता अनुभव नहीं करती ! आश्चर्य ! एक-एक कर वह अपनी सारी बातें नरेश से कह देती है—अपना परिचय तक, और उस परिचय की वजह से अपमान और तिरस्कार, उसके असीम दुःखों का इतिहास।

नरेश चुपचाप सब सुनता है। झूठी सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए बड़े-बड़े शब्दों का जाल नहीं रचता। लेकिन मन-ही-मन लता को

उसके हृदय की उष्णता की अनुभूति होती है एवम् कृतज्ञ होती है।

उनके सर्वप्रथम 'तुम' कहने की घटना लता के लिए स्मरणीय है। अम्बिकाप्रसाद की बड़ी लड़की ने उसके लिए आलू की दो टिकियां भिजवायीं थीं। नरेश उस समय कमरे में बैठा था। लता ने उसके आगे तश्तरी बढ़ायी तो उसने अन्यमनस्क भाव में पूरी तश्तरी ही ले ली और बातें करते-करते एक टिकिया खा गया और दूसरी भी खाने लगा।

सब समझते हुए भी लता सकौतुक दृष्टि से देख रही थी। इतनी देर बाद बोली, 'अरे वाह, आप तो बहुत अच्छे आदमी हैं, मेरे लिए उन लोगों ने भेजीं और मुझे खाने भी नही दिया।'

'अरे ! इसमें शायद आपका भी हिस्सा था। उफ, यह तो मैंने खयाल ही नहीं किया ! ' अब क्या हो, मैंने तो झूठी भी कर दी। आप जरा पहले नहीं कह सकती थीं ?'

'अच्छा, जो बची है वही दे दीजिये। उसे अब मुंह में क्यों डाल रहे हैं ?'

'यह ? यह तो मेरी झूठी है—'

'तो इसमें क्या हुआ ? इस बहाने आप सारी खा जायेंगे, यह तो नहीं हो सकता। दीजिये—'

तश्तरी लेने के लिए हाथ फैलाते हुए लता आगे बढ़ी।

नरेश बहुत असमंजस में पड़ गया, 'नहीं-नहीं, छी। किसी का झूठा नहीं खाना चाहिये। मैं डाक्टर होकर ऐसा कभी नहीं कर सकता—'

'अरे—दो भी, यहां इतनी डाक्टरी दिखाने की जरूरत नहीं।' बिना कुछ खयाल किये ही लता के मुंह से यह बात अपने आप ही निकल पड़ी—और उसने नरेश के हाथ से जबरदस्ती तश्तरी छीन ली।

'तो कम-से-कम इतना तोड़कर—'

उसकी बात पूरी होने के पहले ही लता ने सारा टुकड़ा मुंह में डाल लिया, 'तुमने छोड़ा ही कितना है जो उसमें से भी तोड़कर खाऊँ।'

लेकिन कुछ क्षण पश्चात् ही उसका आकस्मिक भावावेग दूर हो गया। अपने इस दु:साहस और वाचालता से जैसे वह खुद ही शर्म से गड़ गई, यह उद्दण्डता उसे शोभा नहीं देती। क्षण भर में उसे पसीना आ गया। और नरेश भी---लता ने उसे सर्वप्रथम लज्जित और सकुचाया हुआ देखा।

कुछ देर बाद नरेश ने स्वयं को पहले सँभाल लिया। बोला, 'मुँह से जो निकल गया उसे तो अब लौटा नहीं सकतीं किन्तु---'

लता को भी खयाल हुआ तो और भी ज्यादा शर्माते हुए उसने जवाब दिया, 'क्या कहा है मैंने ? कहाँ, मैंने तो---आप क्या कहते हैं---'

'ऊँहूँ, आप नहीं तुम। जरा देर पहले यही कहा गया है---'

'नहीं, चलिये---हटिये। आप बहुत वो हैं। उस वक्त अचानक आवेश में ---मैं यह नहीं कह सकती।'

'नहीं कैसे कह सकतीं, कहना ही होगा। नहीं तो आज से असहयोग।'

'वाह ! आप अच्छे आदमी हैं। अगर अनजाने मुँह से कुछ निकल गया तो---'

नरेश गम्भीर भाव से दीवार की ओर मुँह घुमाकर बैठ गया।

'यह क्या हो रहा है ?' लता हँस पड़ी।

नरेश चुप। 'सुनिये, यह आपका क्या बचपना है ?···कहिये तो।'

अन्त में उसने फिर हँसते हुए कहा, 'अच्छा-अच्छा, बहुत हुआ। लेकिन फिर मुझे भी तुम ही कहना होगा, यह याद रहे।'

'वही तो कहना चाहता हूँ। इतने दिनों से बड़ी मुश्किल से इस शराफत का पालन किया है। चलो, जान बची। जरा सी लड़की और उसे शिष्टाचार के नाते आप कहना होगा !'

दीवार की ओर से मुँह घुमाकर नरेश सीधा बैठ गया।

'आराम से जरा बैठा जाय। इतने दिनों के शिष्टाचार को ताक पर रखकर जरा सहज और स्वाभाविक रूप में बातें की जायें।'

मुँह में धोती का पल्ला देकर लता हँसती है, 'अगर ऐसी ही बात थी तो आप भी तो---'

'ऊँहूँ ?'

'अच्छा-अच्छा ! तुम खुद नहीं कह सकते थे ? इस जरा सी लड़की की इतनी खातिर करने की क्या जरूरत थी ? वही तो स्वाभाविक होता। लेकिन यदि लोग मेरी बदनामी करें ?'

'करें तो करने दो। बदनामी तो ऐसे भी कर सकते हैं। एक हट्टा-कट्टा नौजवान हर रोज यहाँ गप्पें लड़ाने आता है---'

लता का मुँह उदास हो गया। चकित हो नरेश ने यह गौर किया। बोला, 'बदनामी शायद शुरू हो गयी है ?'

सिर हिलाते हुए लता ने कहा, 'हाँ। बहुत दिनों से। बनवारी ही इसमें सबसे आगे हैं, वे ही चारों ओर अंट-संट बकते फिर रहे हैं।'

'ओ---मैंने यह सोचा ही नहीं था !'

इसके बाद नरेश गम्भीर हो गया। मन-ही-मन न जाने वह किस सोच में पड़ गया।

११

इसके बाद का इतिहास संक्षिप्त है । शिष्टाचार में एक बाधा रहती है, उसका बाह्य प्रकाश इस 'आप' संबोधन में होता है। यह बांध टूट जाने पर हृदय के आवेगों को संयत करना मुश्किल नहीं तो और क्या है ।

एक दिन रविवार को दोपहर के वक्त नरेश आया । बोला, 'अस्प-ताल का काम आज खत्म हो गया लता । आज से एक दम छुट्टी ।'

आशा की बजाय लता को आशंका ही ज्यादा हुई, 'इसके मानी ? अब अपने घर चले जाओगे न ?'

'ऊँहूँ', नरेश की आँखों में शरारत खेल गयी, 'नौकरी की कोशिश करूँगा। अभी देश जाकर क्या होगा ? पिताजी को लिख दिया है। रहने का प्रबन्ध भी कर लिया है, अस्पताल का कमरा तो छोड़ना पड़ेगा न ।'

लता ने संतोष का सांस लिया ।

'आओ चलें, जरा गंगा किनारे घूम-फिर आयें ।' नरेश ने ही प्रस्ताव किया ।

'चलो' अपना हाथ-मुँह धोकर लता तैयार हो गयी । तांगे से उतर कर पैदल चलते-चलते नरेश ने कहा, 'अच्छा, यह तो बताओ कि तुम कहाँ डूबना चाहती थीं, वह जगह कौन-सी है ?'

'फिर बेकार की बातें । रहने भी दो उस पुराने किस्से को । पानी

उतरना और डूब मरना क्या एक ही बात है ?'

'अच्छा-अच्छा। मान लिया कि तुम नहाने ही उतरी थीं। पर उस जगह चलो तो सही—'

उस जगह जाकर दोनों बगल-बगल में बैठ गये। मधुमास की अलस दुपहरी। गंगा की लहरों पर भी शेष वसन्त की जैसे एक शान्ति सी छायी हुई है। नावों पर मल्लाह भी बेकारी से सो रहे हैं।

गंगा की लहरों से टकराते हुए ठंडी हवा का झोंका आ रहा है। उस हवा में मानो एक विचित्र मादकता है।

'वाकई, अगर तुम्हारी बीमारी ठीक न होती।' एकाएक नरेश बोल उठा। मानो इस सम्भावना की कल्पना करते ही जैसे वह सिहर उठा। लता के कंधे का जरा-सा अंश उसकी छाती से टकराया, वह सिहरन लता भी अनुभव करती है।

उत्तर देने के लिए जैसे उसके गले से आवाज नहीं निकलती, भर्रायी हुई आवाज में उसने धीरे-धीरे कहा, अगर ऐसा होता तो बहुत अच्छा होता। मेरे जिन्दा रहने से ही क्या लाभ है, बता सकते हो ? मेरा... मेरा शायद उस दिन डूब मरना ही उचित था।'

उसका एक हाथ अपने हाथ में लेकर नरेश ने धीरे-धीरे दबाया। 'तुम्हारे जीवन का मूल्य तुम्हारे अलावा शायद और किसी के लिए भी है, लता।'

'क्या मालूम।'

किसी एक अज्ञात वेदना से लता की आँखों में आँसू निकल पड़े। उसके केश नरेश का मुख स्पर्श कर रहे हैं, दो-चार केश पसीने की वजह से कपोल पर चिपक भी गये है, गाल के सुन्दर तिल पर से अश्रु बहे जा रहे हैं—यह सब देख कर नरेश को एक प्रकार का नशा सा आ रहा है। वह स्थान, काल और पात्र सब कुछ भूल गया। अकस्मात् उसने लता का एक हाथ पकड़ कर खींचा, अपने सीने से लिपटा लिया और बहुत जोर से उसका चुम्बन किया।

लता ने कोई प्रबल बाधा नहीं दी। लेकिन हां, कुछ क्षण पश्चात् ही उसके बंधन से स्वयं को छुड़ाकर सीधी बैठ गयी। रूमाल से अपना आंखें और मुँह पोंछने लगी। लेकिन उसका हाथ थर-थर कांप रहा था, किसी भी तरह अपने हाथ को स्थिर नहीं कर सकी।

नरेश भी कुछ लज्जित, कुछ उत्तेजित और विवश हो गया था। वह भी वैसे ही चुपचाप मिट्टी की ओर देखते हुए बैठा रहा। अन्त में लता को ही पहले होश आया, उसने अपनी आंखें पोंछकर उठते हुए कहा, 'चलो, चलें।' एक-दो आदमी हम लोगों को बहुत गौर से देख रहे हैं।

लौटते वक्त दोनों ही सारे रास्ते चुप रहे। अपने घर पहुँचकर लता ने कहा, 'देखो, अब मेरा मन मेरे काबू में नहीं है। अतः अब हम लोगों का आपस में न मिलना ही अच्छा है।'

'यह नहीं हो सकता, लता।···हम दोनों ही बहुत दूर आगे बढ़ आये हैं।···मैं किसी तरह यदि सहन भी करलूं, लेकिन तुम बर्दाश्त नहीं कर सकोगी।'

'बर्दाश्त तो करना ही होगा। इसके अलावा और दूसरा उपाय भी क्या है, बताओ? तुम तो मुझसे शादी नहीं कर सकते न?'

यह कहने के बाद ही लता को जैसे होश आया, शर्म से वह गड़ गयी। यह उसकी कैसी निर्लज्जता है।

'क्यों नहीं कर सकता?' नरेश विस्मित हो गया, 'नहीं तो तुमने क्या यह समझा था कि अपना मन बहलाने के लिए मैं सिर्फ तुम्हारे साथ 'फ्लर्ट' कर रहा हूँ। लम्पट और कामुक व्यक्तियों की तरह? छीः! सिर्फ आर्थिक अवस्था ठीक नहीं है, इसलिये चुप था—'

'पर अब ज्यादा देर करना ठीक नहीं होगा। या तो अभी शादी करनी होगी और नहीं तो यहाँ से विदा होना पड़ेगा।'

'क्यों?'

'अब मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है—जरा भी।'

कुछ देर चुप रहने के बाद नरेश ने कहा, 'ठीक है तो यह मुझे मंजूर है। लेकिन कुछ दिनों तक तो इसी तरह रहना होगा। अलग मकान लेकर गृहस्थी बसाने की सामर्थ्य अभी मुझ में नहीं है। पिताजी से ही किस बहाने रुपये मँगा सकता हूँ ?'

'इसकी ऐसी क्या जरूरत है ! मैं जैसे नौकरी करती हूँ, वैसे ही करती रहूँगी। तुम जैसे हो वैसे ही रहो। वह तो सिर्फ—'

इसके बाद कुछ क्षण चुप रहने के पश्चात् दूसरी ओर मुँह फेरकर लता ने कहा, लेकिन अब भी समय है, अच्छी तरह सोच लो—कहीं तुम गलती तो नहीं कर रहे हो !'

'तुम तो जानती हो लता, मैं बिना सोचे-समझे कुछ नहीं करता।'

'तुम मेरा क्या परिचय दोगे ?'

'तुम मेरी पत्नी हो—यह परिचय ही काफी है।'

नरेश ने शादी के सम्बन्ध में अपने पिता को कुछ भी नहीं बताना चाहा। कहा, 'अगर उन्हें अभी मालूम हो गया तो वे राजी तो कदापि होंगे ही नहीं, बल्कि मुझे यहाँ से जबरदस्ती ले जाने की हरचंद कोशिश करेंगे। इससे अच्छा है कि चुपचाप शादी हो और मैं भी कुछ कमाने लगूँ। जब कुछ भी करने या किसी तरह की कोई बाधा उपस्थित करने का मौका ही नहीं मिलेगा, तब जो कुछ हो चुका है उसे ही वे शायद चुपचाप स्वीकार कर लेंगे।'

सिर झुकाते हुए लता ने जवाब दिया था, 'लेकिन देखो कहीं मेरी वजह से तुम्हारा पारिवारिक जीवन एकदम नष्ट तो नहीं हो जायगा न ? नहीं तो तुम्हारे माता-पिता मुझे सदा कोसेंगे !'

'चल पगली, तुम और तुम्हारी सन्तान से ही तो मेरा पारिवारिक जीवन होगा। प्रकृति का यही नियम है।'

असीम सुख के रोमाँच से लता आत्म-विभोर हो गई थी। यह स्वप्न

तो उसकी सुदूर कल्पना से भी परे है। ऐसा दुर्लभ सौभाग्य जब एक बार मिल ही रहा है तब अनजान भविष्य के सम्बन्ध में सोच-विचार कर क्या कोई उसकी उपेक्षा कर सकता है।···लता भी नहीं कर सकी। अनेक प्रश्न और समस्याओं के बारे में वह सोच सकती थी, लेकिन उसने जानबूझ कर ही कुछ नहीं सोचा।

विवाह हो गया। अम्बिकाप्रसाद ने ही सब व्यवस्था की। पहले तो उन्होंने यह समझा था कि नरेश उनके स्कूल की हेडमिस्ट्रेस को फोड़-कर ले जा रहा है, इसलिए कुछ बेरुखाई भी दिखायी थी। लेकिन जब उन्हें यह मालूम हुआ कि न तो लता अभी नौकरी छोड़ेगी और न नरेश ही यहाँ आकर रहेगा—तब तो उन्होंने बहुत प्रसन्न होते हुए ही विवाह का सब प्रबन्ध कर दिया, यहाँ तक कि विवाह के रजिस्ट्री आफिस में उन्होंने स्वयं गवाह के रूप में हस्ताक्षर किये।

बनवारी की पत्नी ने खुश होकर पहले दिन लता को दावत दी।

१२

प्रायः दो महीने बाद एक दिन दोपहर को नरेश आया। उसके बाल बिखरे हुए थे और चेहरे पर घबराहट तथा परेशानी के चिह्न सुस्पष्ट थे। उस दिन छुट्टी थी, इसलिए खा-पीकर लता लेटने ही वाली थी। उसको इस हालत में देख चटपट उठ बैठी, 'यह क्या, एकाएक इस वक्त ? तुम्हारी यह क्या शक्ल बनी हुई है ? तबियत-अबियत तो खराब नहीं है ?···बैठो, बैठो। सुबह से कुछ खाया-पीया भी है या नहीं ?'

नरेश ने कहा, 'बैठने का वक्त नहीं है, अभी-अभी तार मिला है—माँ अपनी आखिरी साँसें गिन रही हैं। मैं ढाई बजे की गाड़ी से जा रहा हूँ। तुमको खबर देने आया था, अब वक्त नहीं है।'

'यह क्या ? बिना कुछ खाये-पीये ही चले जाओगे ? जरा पाँच मिनट बैठो। फौरन ही स्टोव पर पूरियाँ उतार देती हूँ। कम-से-कम अपना मुँह-हाथ तो धो लो—'

लेकिन न जाने किस अज्ञात भय से लता का हृदय काँप उठा। उसके अनजाने ही उसके मुख पर आशंका की कालिमा छा गयी।

कुछ चिड़चिड़े स्वर में ही नरेश ने कहा, 'अरे जाने का नाम सुनते ही तुम्हारा मुँह सूख गया। देखता हूँ कि सब औरतें एक ही समान होती हैं।'

'नहीं, यह बात नहीं।' कुछ शर्माते हुए लता ने कहा, 'माँ की हालत

खराब है—क्या होगा, इसकी ही फिक्र है।'

'ओ, जैसे यही सोचकर तुम्हारा चेहरा उतर गया है। तुम असल में इसलिए घबड़ा गयी हो कि वापस आने में मुझे न जाने कितने दिन लग जायें—'

उसकी इस आकस्मिक बेरुखाई से लता की आँखों में आँसू आ गये, 'ऐसा सोचने में भी क्या कोई बुराई है ?' यह कहकर वह अपने आँसुओं को रोकने की कोशिश करने लगी।

यह कहने के बाद नरेश भी कुछ सकुचा गया था, अब उसने प्रसग बदल दिया। लता ने उसके बालों में तेल लगा दिया, फिर नरेश ने अपना मुँह-हाथ धोया और इस बीच लता ने उसके लिए पूरियां उतार दी।

खा-पीकर जब नरेश 'अच्छा, मैं जाता हूँ' कहते हुए उठा तब वह अपने मन के भावों को और न छिपा सकी, चौखट के पास आकर उसने कहा, 'बप्पाजी, बीमारी का सिर्फ बहाना तो नहीं है ?'

'बहाना ? बहाना क्यों ?'

'तुम्हें यहाँ से बुलाने के लिए—बहुत दिनों से नहीं गये हो इसीलिए—' धीरे-धीरे काँपते हुए स्वर में लता ने कहा, असली डर फिर भी नहीं बता सकी।

'हट, पगली ! बहाने की क्या जरूरत है, अगर मुझे ऐसे ही बुलाते तो क्या मैं नहीं जाता ?'

नरेश के चले जाने के बाद लता बहुत देर तक पत्थर की मूर्ति की तरह वहीं खड़ी रही। पत्थर की मूर्ति की तरह ही उसका शरीर अचल और स्थिर है, लेकिन हृदय में जैसे तूफान उठा है। कितनी दुश्चिताएँ, अमंगल की आशंकायें, भविष्य के कितने भयकर स्वप्न।

लता ने अपने मन को बहुत समझाया। जो कुछ हुआ है उसे स्वाभाविक ही समझना चाहिये—झूठमूठ की कल्पनाओं से क्या फायदा ? स्वाभाविक रूप से वह अपने काम-काज में लग गयी।

चार-पाँच दिन बाद नरेश का एक कार्ड मिला, दो लाइन का—मां अच्छी तरह हैं, जल्दी ही आ रहा हूँ !

उसके पति की यह पहली चिट्ठी है। प्रेम-पत्र ही होना चाहिये था ! लता ने सूखी हँसी के साथ कार्ड को जरा उलटा-पुलटा और फिर बक्स में रख दिया। नरेश का और कोई भी पत्र उसके पास नहीं है।

चार-पाँच दिन बाद नरेश आ गया। जैसे एकाएक वह गया था वैसे ही अकस्मात लौटा। मानो आँधी उसे उड़ा ले गयी थी और आँधी ही उसे यहाँ फिर पटक गयी—ऐसी ही कुछ उसकी शक्ल बनी हुई थी। ठीक वैसा ही—रूखे और बिखरे बाल, थका और घबराया हुआ जैसा। सारी कमीज पसीने से तर थी।

लता सिहर उठी, 'अरे इन आठ-दस दिन में ही तुम्हारी यह क्या दशा हो गयी है ? वहाँ अच्छी तरह थे न ?···मां अब कैसी हैं ? ऐसा लगता है जैसे कई दिनों से सोये नहीं हो ?'

नरेश ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक विचित्र दृष्टि से लता की ओर देखता रहा।

लता ने आगे बढ़ते हुए उसका हाथ पकड़कर कुर्सी पर बिठाया। पंखा झलते-झलते प्रश्न किया, 'क्यों ? वहाँ अच्छी तरह थे न ? बीमार-ईमार तो नहीं पड़े ?···या कोई बुरी खबर है। तुम कुछ घबराये हुए से क्यों हो ?

नरेश ने उसका हाथ पकड़ कर धीरे-धीरे कहा, 'अभी जरा चुप रहने दो, फिर कहूँगा।'

फिर उसने और कोई प्रश्न नहीं किया। कुछ-न-कुछ जरूर हुआ है, शायद बहुत जबरदस्त चोट पहुँची है। लेकिन उसकी प्रतीक्षा की जा सकती है। पति जब उसके पास आ गया है, तब फिर लता को और कोई भय नहीं है—वह अपेक्षा कर सकती है।

वह उसके लिए खाना बनाने वाली थी, लेकिन नरेश ने मना कर दिया; 'सिर्फ एक कप चाय।'

'कुछ खाओगे नहीं ?'

'नहीं, भूख नहीं है। सिर्फ चाय ही दो।'

चाय पीने के बाद नरेश बोला, 'चलो, ज़रा घूम आयें।'

'कहाँ ?'

'चलो, जरा गंगा किनारे ही चलें।···वहाँ, जहाँ हम लोग उस दिन गये थे—उसी जगह ?'

उसकी आवाज में न जाने क्या था। चकित होकर लता खड़ी हो गयी, बोली, 'बात क्या है ? क्या हुआ है, मुझे बताओ न ? ऐसे क्यों हो रहे हो ?'

'चलो, वहाँ पहुँचकर सब बताऊँगा।'

अब लता को न जाने क्यों कुछ भय-सा लगा। कपड़े बदलते हुए उसके हाथ काँपते हैं। किसी तरह कपड़े पहन कर वह चल दी।

सारे रास्ते चुप रही। ताँगे में एक जनानी सवारी थी, इसलिए उसे पीछे बैठना पड़ा। नरेश आगे बैठा, उसकी ओर पीठ किये हुए। उसके चेहरे के भाव भी लता नहीं देख पाती। क्या सुनने को मिलेगा, ऐसी क्या बुरी खबर होगी—कल्पना तक नहीं की जा सकती।

गंगा किनारे पहुँचकर भी नरेश बहुत देर तक चुप रहा, अपलक नयनों से गंगा की लहरों को देखता रहा। लता भी प्रश्न नहीं कर पाती, उसका सारा साहस जैसे एकदम लुप्त हो गया है।

बहुत देर बाद नरेश ने कहा, 'लता, एक दिन तुम यहाँ डूब मरना चाहती थीं, अब हिम्मत है ?'

'इसका—इसका क्या मतलब ?' व्याकुल लता की आवाज बहुत कष्ट से निकली।

'तुम और मैं—हम दोनों इस बार साथ-साथ।···अब मेरे लिए जिन्दा रहने का कोई उपाय नहीं है लता।'

अब लता के धैर्य्य का बाँध टूट गया, 'क्यों जी ? तुम्हें हुआ क्या है, यह बताओ न ! नहीं तो मेरी समझ में क्या आयेगा ? मैं अब और

कुछ नहीं सोच सकती ।···तुमने आखिर किया क्या है—किसी की हत्या ?'

'नहीं, उससे भी ज्यादा बदतर और भीषण ।···मैं, मेरा फिर विवाह हो गया है ।'

'क्या, क्या हो गया है ?' लता का आर्त स्वर ।

लेकिन नरेश उत्तर नहीं दे पाता, उत्तर का प्रयोजन भी नहीं था । लता का वह प्रश्न नहीं है—हृदय को चीरकर निकलने वाला, क्रन्दन है ।

किन्तु उसकी आँखों से आँसू नहीं निकले, पाषाण की तरह लता की आँखों का जल भी सूख गया है । मुँह से आवाज भी नहीं निकलती, सिर्फ निःशब्द ही उसके दोनों होंठ काँप रहे हैं । और चाहे जैसी और जितनी भी बुरी खबर क्यों न होती—पर ठीक इसके लिए वह कतई तैयार नहीं थी ।

नरेश ने ही कुछ देर बाद मौन भंग किया, बहुत धीरे-धीरे और सकुचाते हुए, जैसे स्वगत ही बोल रहा हो, 'उन्हें खबर कैसे मिली, यहीं से ही किसी ने गुमनाम पत्र भेजा था, शायद तुम्हारे मंत्री महाशय के साहजादे ने—इसलिए उन्होंने पहले सब कुछ ठीक-ठाक कर तार दिया था । पहुँचने के दो घंटे बाद ही शादी । मुझे मौका ही नहीं मिला, कुछ कहने-सुनने का, सोचने-समझने का । मेरे इन्कार करते ही माता-पिता मेरे पैरों के पास अपना सिर फोड़ने लगे, अपनी जान देने के लिए वे तैयार हो गये । नाते-रिश्तेदारों ने मुझे चारों ओर से घेर लिया ।··मैं स्वयं को ठीक से नहीं संभाल सका—पिताजी ने अब तक मेरे लिए जो कुछ किया है उसका ऋण मैं सात जन्म में भी नहीं चुका सकता ।··· मैं कैसे पाषाण हो जाता, तुम्हीं कहो ? उन लोगों को लाख समझाया कि मेरी शादी हो चुकी है, यह विवाह गलत होगा—लेकिन मेरी कौन सुनता था, मेरी किसी बात पर जरा भी विश्वास नहीं किया। उन लोगों का ख्याल था कि हमारी-तुम्हारी सिर्फ घनिष्ठता ही है—'

बहुत देर तक अपलक दृष्टि से पश्चिम दिशा की ओर देखती हुई

लता बैठी रही। उस पार के मकानों के पीछे सूर्यास्त हो रहा है—प्रकाश की सिर्फ एक परछाईं जैसी आकाश में है। वास्तव में वह प्रकाश नहीं है—

बहुत देर बाद लता ने सिर्फ इतना ही कहा, 'इसके बाद ?'

'इसके बाद ? मृत्यु के अलावा मुझे तो और कोई पथ नहीं सूझता। ...अब मैं कैसे जिन्दा रह सकता हूँ। उस एक क्षण की दुर्बलता और कायरता का फल सारी जिन्दगी भोगना पड़ेगा ? मुझसे यह नहीं होगा।... मैं और तुम, आओ हम दोनों ही एक साथ सब कुछ खत्म कर दें—'

लता एकदम उठ खड़ी हुई, 'अगर मरना है तो सिर्फ मुझे ही मरना पड़ेगा, क्योंकि अब तुम्हारा जीवन किसी और एक के साथ भी बंध चुका है। तुम्हारा यह विवाह गैरकानूनी है, पर उस लड़की का तो नहीं है। उसका क्या कसूर ? सब कुछ अच्छी तरह से जानते-बूझते हुए भी तुम उसका जीवन क्यों बर्बाद करना चाहते हो ? उसकी तो हिन्दू धर्म के अनुसार शादी हुई है--उसकी तो अब दूसरी शादी भी नहीं हो सकती।...अतः मुझे ही अपने प्राण देकर तुम लोगों के पथ से हट जाना चाहिये, यही उचित है। पर यह उपाय भी अब मेरे लिए नहीं बचा है। कारण—मेरे...मैं तुम्हारी सन्तान की माँ बनने वाली हूँ !'

'लता—' उसकी ओर देखने की भी हिम्मत नरेश में नहीं होती, अपराधी की तरह बार-बार असहाय भाव से पुकारता है।

'अपनी गोद में शान्ति देने के लिए गंगा की ये लहरें जैसे मुझे बार-बार बुला रही हैं—यहाँ रहने पर मरने की ही इच्छा होगी। इसलिये चला जाना ही अच्छा है।'

'लेकिन अब, इसके बाद मैं कैसे जीवित रहूँगा, तुम ही बताओ न !'

उसकी आवाज में एक तीक्ष्ण व्यंग फूट पड़ा, 'मैं कैसे जीवित रहूँगी, यह समस्या है। तुम्हारा पथ तो सहज और उन्मुक्त है, तुम्हें भला किस बात की चिन्ता है ? लेकिन जानते हो, बचपन से ही आघात सहते-सहते मैं पत्थर हो गयी हूँ—मैं सब कुछ सह लूंगी, बर्दाश्त हो जायगा।...घर चलो।'

१३

प्रेम की सारी नींव एक अक्षय आशावाद पर आधारित है। इसलिये बहुत रोने-धोने और मान-मनौवल के बाद लता फिर भी नरेश को आत्म समर्पण करती है और यह आशा करती है कि नरेश सिर्फ उसका ही पति बना रहेगा। सुदूर रुद्रपुर नामक गाँव में एक अन्य लड़की का क्या होगा, इस बारे में सोच-विचार कर वह अपना माथा-पच्ची नहीं करना चाहती। कारण, प्रेम सिर्फ आशावादी ही नहीं है—स्वार्थ पर भी है।

महीने भर बाद ही नरेश को एक नौकरी मिल गयी। देवरिया जिला के एक गाँव में—यहाँ के ही एक धनी व्यवसायी ने अस्पताल बनवाया है, हालाँकि उसकी देखभाल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के जिम्मे है। अभी सवा सौ रुपया महीना मिलेगा, लेकिन प्राइवेट प्रेक्टिस करने की छूट है। अवश्य, बाहरी प्रेक्टिस से कुछ आमदनी भी होगी इसमें नरेश को संदेह है, ठेठ देहाती जगह है। लेकिन हाँ, उन दोनों की छोटी-सी गृहस्थी सवा सौ रुपये में चल जायगी। वे लोग उसके लिए एक क्वार्टर भी बनवा रहे हैं—जब तक वह नहीं बन जाता तब तक लता को ले जाना संभव नहीं है। अभी तो नरेश को अकेला ही जाना होगा।

लता खुश भी हुई—और कुछ डरी भी। बोली, 'लेकिन वहाँ से कहीं तुम्हारे घर वाले तुम्हें जबरदस्ती पकड़ कर तो नहीं ले जायेंगे ?'

कुछ तिरस्कार की दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए नरेश ने कहा,

'अगर ले ही जाना था तो क्या यहाँ से नहीं ले जा सकते थे ? उन लोगों ने कोशिश तो कोई कम नहीं की, यह तो तुम भी जानती हो !'

हाँ, यह ठीक है। लता लज्जित होती है, अपने एक क्षण के अविश्वास के लिए। उसका मन ही नीच है।

जाने वाले दिन उसने सिर्फ एक बार प्रश्न किया, 'सुना है कि वहाँ ज्यादातर कच्चे-पक्के मकान होते हैं—तुम ही तो उस दिन कह रहे थे—तो क्वार्टर कब तक तैयार हो जायगा, क्या ख्याल है ?'

कच्चे-पक्के घर की वजह से ही तो देरी हो रही है—यह क्यों भूल जाती हो कि आजकल बरसात का मौसम है ?'

'ओ !' संक्षेप में लता ने सिर्फ कहा।

'इतनी जल्दी क्या है ? शरारत से हँसते हुए नरेश ने कहा, 'अभी तो पाँच-छः महीने की देर है।'

'चलो हटो, तुम बहुत दुष्ट हो !' लता हँस पड़ी।

शुरू-शुरू में नियमित रूप से चिट्ठियाँ आयीं। महीने भर बाद नरेश एक दिन मिलने भी आया। ऐसी हालत में क्या खाना उचित है, कैसे रहना चाहिये, कौनसी दवा खानी चाहिये—यह सब भी बता गया।

लता ने कहा, 'लेकिन अब मैं और ज्यादा दिनों तक नौकरी नहीं कर सकती। अब मुझे छुट्टी लेनी होगी।'

'छुट्टी ? छुट्टी का क्या होगा। तुम नौकरी ही छोड़ दो। समय रहते अम्बिका बाबू को नोटिस दे दो ताकि वे दूसरी मास्टरनी तलाश कर लें। अब किस बात की फिक्र है, अब तो मैं कमा रहा हूँ, रुपये भेज दिया करूँगा।'

निश्चिन्त हो लता ने नोटिस दे दिया। महीने भर बाद स्कूल की लड़कियों ने धूमधाम से विदाई समारोह मनाया। सब ही खुश हैं—लता

अपने घर जायगी। अम्बिका प्रसाद ने सिर पर हाथ फेरते हुए अनेक आशीर्वाद दिये। बोले, 'मैं फिजूल ही नरेश पर नाराज था—तुम्हारी जैसी सुन्दर बहू पाना तो सौभाग्य है। अब तुम अपनी घर-गृहस्थी बसाओ, मेरे स्कूल में हमेशा थोड़े ही नौकरी करती रहोगी ?'

दूसरे माह, महीने के शुरू में ही नरेश ने पचास रुपये भेजे। पर उसके बाद से ही चिट्ठी-पत्री आना कम होने लगा। घबड़ाकर लता ने कई पत्र लिखे—एक-दो का जवाब आया भी दस-पन्द्रह दिन बाद और वह भी बहुत संक्षिप्त। लेकिन इसके बाद दूसरे महीने में रुपये नहीं आये और चिट्ठी आना भी एकदम बन्द हो गया।

लता का दिल बैठ गया। इधर पास में जो कुछ रुपया था वह भी खर्च हो गया। इस बीच दिवाली के वक्त नरेश को एक दिन के लिए तो अवश्य आना चाहिये था, पर उसका कोई पता ही नहीं। इधर दिन व दिन उसका शरीर भारी होता जा रहा है—कुछ न कुछ व्यवस्था करना जरूरी है। यदि बाल-बच्चा यहीं होगा तो उसे अस्पताल में जाना होगा। लेकिन इसका भी अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ है।

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे त्यों-त्यों उसके मन में नाना प्रकार की शंकायें उठने लगीं। उसे इस दुनिया में अंधकार नजर आने लगा।

अन्त में हारकर उसने तार भेजा। तार लौट आया। अस्पताल के अधिकारियों के नाम उसने जवाबी तार भेजा। उत्तर मिला, नरेश नौकरी छोड़कर चला गया है।

अब तो लता की आँखों के सामने एकदम अंधकार छा गया।

किसके पास जायेगी; किससे अपना सारा दुःख कहे ?

आस-पास के लोग पीठ पीछे हँसते हैं। पास में पैसा नहीं, नौकरी नहीं—नौकरी करने लायक शरीर में सामर्थ्य भी नहीं।

अब वह क्या करे ? यह कौन बतायेगा कि ऐसी हालत में क्या करना उचित है ?

बहुत सोच-विचार के बाद लता शान्ति बहन के यहाँ पहुँची। शुरू

से आखीर तक उन्हें सारी बातें सुनानी पड़ीं। सुनते-सुनते व्यंग की एक रेखा उनके होठों पर आयी थी पर फौरन ही मिट गयी। बहुत गम्भीर भाव से उन्होंने कहा, 'इस तरह के विवाह का यही फल होता है लता।·····लेकिन नरेश ने जब दूसरी बार फिर शादी की थी, तब ही तुमने मुझको खबर क्यों नहीं दी ? तब तुमने उसको बहुत सरलता के साथ क्षमा कर दिया ? ·····उस समय जरा हो-हल्ला करने पर, मुकदमा करने की धमकी देने पर कुछ-न-कुछ बंदोबस्त करने के लिए उसके पिता तक को राजी होना पड़ता। इतने दिनों तक विवाह की बात गुप्त रखकर भी तुमने भयंकर भूल की है।'

फिर कुछ देर रुककर कहा, 'तुम चाहे जो भी कहो लता, लेकिन मुझे तो नरेश बिलकुल निर्दोष नहीं मालूम पड़ता। शुरू से ही उसका उद्देश्य अच्छा नहीं था। उसने तुम्हारे साथ सिर्फ अपना दिल बहलाया है, खेल किया है—'

लता की आँखों में आँसू आ गये थे। आँसुओं को रोकते हुए जमीन पर आँखें गड़ाये बोली, 'अब आपकी राय में मुझे क्या करना चाहिये ?'

'क्या राय दूँ, यही तो सोच रही हूँ। नरेश यदि घर में न रखे तो तुम जबरदस्ती नहीं रह सकतीं। दूसरी बार शादी करने के अपराध में तुम क्रिमिनल केस कर सकती हो। लेकिन उससे ही क्या लाभ होगा—हाँ भरण-पोषण के लिए कुछ महीना बंध जायगा।···पर मेरी यह राय है कि एक बार तुम वहाँ जाओ, अपने को 'एसर्ट' करने की चेष्टा करो। नालिश करने का डर दिखाओ—

'मैं जाऊँ ? कहाँ जाऊँ ?'

'अपनी ससुराल—रुद्रपुर।'

'वहाँ ? अकेली ?'

'इसमें क्या नुकसान है ?······नहीं तो तुम्हारे साथ कौन जायगा ?'

'पर वे लोग···यानी वे···यदि अब कहें···मेरा परिचय सुनकर नाक-भौं सिकोड़ें ? यदि यह कहें कि मैंने उन्हें अपना असली और सच्चा परिचय नहीं बताया था—''

'शादी की रजिस्ट्री हुई है—यह कोई खेल नहीं है, लता। इस विषय में तुम निश्चिन्त रहो।'

घर आकर लता ने बहुत सोचा कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा—और वह भी जल्दी ही। इसके बाद चलना-फिरना भी शायद असंभव हो जायगा।

नरही स्टेशन पर उतरकर मोटर लारी में प्रायः तीन-चार मील जाना पड़ता है, और वहाँ से बैलगाड़ी में—तब रुद्रपुर पहुँचते हैं, नरेश के मुँह से लता ने यह कई बार सुना था। उसके पिता गाँव के सम्पन्न गृहस्थ हैं, मुखिया भी हैं। अतः मकान खोजने में कोई तकलीफ नहीं होगी। तो भी अनजान, अपरिचित स्थान में पति परित्यक्ता होकर स्वयं को इस तरह उपस्थित करते हुए उसे बहुत शर्म आती है।

लेकिन इसके अलावा और कोई उपाय भी तो नहीं है। वास्तव में आज कहीं खड़े रहने का भी उसके लिए स्थान नहीं है। अपनी इच्छा और पसन्द से ही उसने विवाह किया था। बिना किसी से कोई सलाह-मशविरा लिए—अब यदि विवाह व्यर्थ होता है तो फिर वह किस मुँह से लोगों से दया या अनुग्रह की भिक्षा माँग सकती है।······

अन्त में हेमन्त की एक दुपहरी में एक दिन वास्तव में वह अपनी ससुराल के सामने बैलगाड़ी से उतरी। अदृष्ट की विडम्बना। ससुराल में पहली बार दुलहिन आयी, स्वागत नहीं हुआ, घंटा-घड़ियाल या शहनाई नहीं बजी, किसी ने आरता नहीं उतारा। भीतर ले जाने के लिए, कोई आगे नहीं आया। उसे देखकर सिर्फ नग्न और अर्द्ध-नग्न बालक-बालिकाओं का झुण्ड खड़ा हो गया—

बैलगाड़ी की आवाज सुनकर जो भीतर से निकले, लता ने अन्दाज से पहचान लिया कि ये ही उसके ससुर हैं। नरेश की जबानी उसने अनेक बार वर्णन सुना है।

'कौन है ?···ऐ गाड़ीवान, कहाँ से आया है ?'

लता आगे बढी और उसने झुककर प्रणाम किया।

'कौन, कौन हैं आप ?' विस्मित महेश बाबू दो कदम पीछे हट गये।'

'मैं—मे आपके बेटे की बहू हूँ।'

'कौन ? मेरी कौन ?···ओह, रण्डी की बेटी, मेरे बेटे को जिसने अपने जाल में फँसा लिया था !···लेकिन यहाँ क्यों और किसलिए आयी हो ?'

लता चुपचाप सिर झुकाये खड़ी रही, पसीने से तर-बतर हो गयी इस बीच चारों ओर अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी।

'यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी। अपना काला मुँह लेकर यह से चुपचाप चली जाओ, इसी में तुम्हारी खैर है···ऐ गाड़ीवान इस छिनाल कलमुँही को यहाँ से ले जा, जहाँ से लाया है वहीं—'

लता ने आखिरी कोशिश की, भर्रायी हुई आवाज में कहा, देखिए मेरे साथ उनकी शादी पहले हुई थी रजिष्ट्री से, अगर विश्वास न हो तो आप सार्टिफिकेट देख सकते हैं। मेरे पास है। यहाँ मेरा अधिकार है, इसीलिए आयी हूँ।'

'हूँ-हूँ—'शादी हुई है, रजिस्ट्री से।' महेश बाबू ने मुँह बनाते हुए कहा, 'इन सब बातों के चक्कर में मैं नहीं आने वाला। जहाँ इन बातों का कुछ असर हो वहाँ जाकर कहो। और अधिकार, अधिकार क्या होता है री, जब तक मे जिन्दा हूँ तब तक यह सारी मेरी सम्पत्ति है—उस कपूत की इसमें फूटी कौड़ी भी नहीं है। तेरा बस चले तो उसे जेल भेज दे, जो लेना हो उससे जाकर ले—'

इसके बाद उन्होंने गाड़ीवान को बहुत जोर से धमकाया, 'अबे ग

गाड़ीवान के बच्चे, मेरी बात नहीं सुनता ?···देख रे वह मेरा मकान है, मेरा गांव है—भलाई इसी में है कि यहां से चुपचाप चली जाओ। औरत की जात जानकर कुछ नहीं कहा, नहीं तो मुझ से ज्यादा और कोई बुरा न होता।···बाजारू औरत कहती है कि मैं आपके बेटे की बहू हूं। अपनी जवानी में सब लड़के एक-दो ऐसा काम कर ही बैठते हैं, तो क्या इसीलिए सब पत्नी हो जायेंगी। जाओ-जाओ, यहां से अपना कला मुंह ले जाओ।'

आंसू बहाते हुए लता धीरे-धीरे गाड़ी में जाकर बैठ गयीं। अविरल अश्रुओं की वजह से जैसे वह अन्धी हो गयी थी।

अब गाड़ीवान ने भी बर्राना शुरू किया, 'आप भी एक ही हैं, वे मानते नहीं और आप उनके सिर जबरदस्ती पड़ती हैं। यह तो वही बात ई कि मान न मान मैं तेरा मेहमान। अपने साथ मुफ्त में मुझे भी चार बातें सुनवा दीं, आपकी वजह से खामख्वाह मेरा भी अपमान हुआ !'

फिर मोटर-लारी में सवार होकर न रही स्टेशन। अभी ट्रेन नहीं है, ट्रेन रात के दस बजे आयेगी। अब उससे खड़ा नहीं रहा जाता, पैर जैसे टूटे जा रहे हैं। पेट में भी कुछ दर्द हो रहा है, क्या मालूम कैसा दर्द है। प्लेटफार्म के कंकड़ों पर अपना टीन का सूट-केस पटककर उसी पर बैठ गयी। ऐसे दो-चार व्यक्ति जो हर समय स्टेशन पर घूमते रहते हैं, वे उसको अंधेरे में इस प्रकार अकेले बैठे हुए देखकर चकित हो गये।

कुछ फल नहीं निकला। यह तक मालूम नहीं हुआ कि वे कहां हैं और क्या कर रहे हैं। अवश्य वहां नहीं थे, नहीं तो क्या उसकी आवाज सुनकर एक बार भी बाहर नहीं आते ?

क्या मालूम ! उनमें इतनी भी शराफत है या नहीं।

बैलगाड़ी की आवाज सुनकर जो भीतर से निकले, लता ने अन्दाज से पहचान लिया कि ये ही उसके ससुर हैं। नरेश की जबानी उसने अनेक बार वर्णन सुना है।

'कौन है ?···ऐ गाड़ीवान, कहाँ से आया है ?'

लता आगे बढी और उसने झुककर प्रणाम किया।

'कौन, कौन है आप ?' विस्मित महेश बाबू दो कदम पीछे हट गये।'

'मैं—मैं आपके बेटे की बहू हूँ।'

'कौन ? मेरी कौन ?···ओह, रण्डी की बेटी, मेरे बेटे को जिसने अपने जाल में फँसा लिया था !···लेकिन यहाँ क्यों और किसलिए आयी हो ?'

लता चुपचाप सिर झुकाये खड़ी रही, पसीने से तर-बतर हो गयी। इस बीच चारों ओर अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी।

'यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी। अपना काला मुँह लेकर यहाँ से चुपचाप चली जाओ, इसी में तुम्हारी खैर है···ऐ गाड़ीवान इस छिनाल कलमुँही को यहाँ से ले जा, जहाँ से लाया है वहीं—'

लता ने आखिरी कोशिश की, भर्रायी हुई आवाज में कहा, देखिये मेरे साथ उनकी शादी पहले हुई थी रजिष्ट्री से, अगर विश्वास न हो तो आप सार्टिफिकेट देख सकते हैं। मेरे पास है। यहाँ मेरा अधिकार है, इसीलिए आयी हूँ।'

'हूँ-हूँ—'शादी हुई है, रजिस्ट्री से।' महेश बाबू ने मुँह बनाते हुए कहा, 'इन सब बातों के चक्कर में मैं नहीं आने वाला। जहाँ इन बातों का कुछ असर हो वहाँ जाकर कहो। और अधिकार, अधिकार क्या होता है री, जब तक मैं जिन्दा हूँ तब तक यह सारी मेरी सम्पत्ति है—उस कपूत की इसमें फूटी कौड़ी भी नहीं है। तेरा बस चले तो उसे जेल भेज दे, जो लेना हो उससे जाकर ले—'

इसके बाद उन्होंने गाड़ीवान को बहुत जोर से धमकाया, 'अबे ओ

गाड़ीवान के बच्चे, मेरी बात नहीं सुनता ?···देख रे वह मेरा मकान है, मेरा गांव है—भलाई इसी में है कि यहां से चुपचाप चली जाओ। औरत की जात जानकर कुछ नहीं क़हा, नहीं तो मुझ से ज्यादा और कोई बुरा न होता।···बाजारू औरत कहती है कि मैं आपके बेटे की बहू हूँ। अपनी जवानी में सब लड़के एक-दो ऐसा काम कर ही बैठते हैं, तो क्या इसीलिए सब पत्नी हो जायेंगी। जाओ-जाओ, यहां से अपना काला मुँह ले जाओ।'

आँसू बहाते हुए लता धीरे-धीरे गाड़ी में जाकर बैठ गयीं। अविरल अश्रुओं की वजह से जैसे वह अन्धी हो गयी थी।

अब गाड़ीवान ने भी बर्राना शुरू किया, 'आप भी एक ही हैं, वे मानते नहीं और आप उनके सिर जबरदस्ती पड़ती हैं। यह तो वही बात ई कि मान न मान मैं तेरा मेहमान। अपने साथ मुफ्त में मुझे भी चार बातें सुनवा दीं, आपकी वजह से खामख्वाह मेरा भी अपमान हुआ !'

फिर मोटर-लारी में सवार होकर न रही स्टेशन। अभी ट्रेन नहीं है, ट्रेन रात के दस बजे आयेगी। अब उससे खड़ा नहीं रहा जाता, पैर जैसे टूटे जा रहे हैं। पेट में भी कुछ दर्द हो रहा है, क्या मालूम कैसा दर्द है। प्लेटफार्म के कंकड़ों पर अपना टीन का सूट-केस पटककर उसी पर बैठ गयी। ऐसे दो-चार व्यक्ति जो हर समय स्टेशन पर घूमते रहते हैं, वे उसको अंधेरे में इस प्रकार अकेले बैठे हुए देखकर चकित हो गये।

कुछ फल नहीं निकला। यह तक मालूम नहीं हुआ कि वे कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं। अवश्य वहाँ नहीं थे, नहीं तो क्या उसकी आवाज सुनकर एक बार भी बाहर नहीं आते ?

क्या मालूम ! उनमें इतनी भी शराफत है या नहीं।

प्राय: आठ बजे कृष्ण पक्ष का चाँद निकला। स्टेशन पर एक-एक कर लोग जमा होने लगे—दस बजे वाली ट्रेन से ही जायँगे। वे लोग भी उसे बड़े गौर से देख रहे हैं—

एकाएक लता को ख्याल आया, अच्छा जब यहाँ नहीं है तो ? जहाँ वे काम करते थे ? तार की सारी खबर शायद झूठी थी—सब बहाना था।

एक बार वहाँ का भी चक्कर लगाये ? वहाँ जाने पर कम से कम उनकी खबर, कुछ पता-वता तो चल ही जायगा।

अपने पुराने कर्मस्थल में जाने के लिए भी तो कोई रास्ता नहीं है। वहाँ जाकर ही वह क्या करेगी, वहाँ ही उसका कौन है ? गंगा के शीतल जल के अलावा अब और उसके लिए कहाँ आश्रय है ? अन्तिम बार देख जाने मे नुकसान ही क्या है ?

दो दिनो से बिना नहायी-धोयी, भूखी-प्यासी और थकी-माँदी लता रात्रि के अन्तिम प्रहर में नरसिंहपुर स्टेशन पर उतर पड़ी और फिर बैलगाड़ी में बैठी। उसका चेहरा एकदम पागलों जैसा हो रहा था। भूख-प्यास का उसे कुछ ख्याल ही न था। अपनी सुध-बुध खोकर नशे-बाज की तरह चली जा रही है। गाड़ीवान ने भी पहले संदिग्ध दृष्टि से देखकर उसे बैठाने से इन्कार कर दिया था, लेकिन हाथ में रुपये रख देने पर उसने बैल जोड़े।

रास्ते में बातचीत के दौरान में ही उसे पता चला कि जो नौजवान डाक्टर बोर्ड के अस्पताल में आया था, वह अब भी है। घर-गृहस्थी भी है या नही, उसे यह नहीं मालूम।

तो क्या लता लौट जाय ? इतना रास्ता तै करने से क्या फायदा ?

नहीं, इतनी दूर आकर क्या वह अन्त में बिना मिले ही चली जायगी। इस नाटक की यवनिका आज ही होनी चाहिये।

प्राय: तीन बजे अस्पताल के दरवाजे पर आकर बैलगाड़ी रुकी। चौकीदार से पूछने पर उसने क्वार्टर बता दिया।

आधा कच्चा-पक्का खपरैल का नया मकान है—अस्पताल से थोड़ी दूर पर ही। नया बना है, यह तो देखने से ही मालूम हो जाता है। तो यही उनका क्वार्टर है—किसी दिन जहां उसने अपनी गृहस्थी बसाने का स्वप्न देखा था।

पैर आगे नहीं उठना चाहते, अपमान और लज्जा से उसका सिर झुक जाता है। तो भी आगे कदम बढ़ाने पड़ते हैं।

खिड़की पर पर्दा पड़ा हुआ है। लेकिन उसके पैरों की आहट सुनकर जैसे किसी ने एक बार झांका और फिर फौरन ही छिप गया?

नरेश!

लता के हृदय की धड़कन जैसे बन्द हो गयी। दोनों हाथों से अपने सीने को दबाते हुए वह जरा खड़ी हो गई। लेकिन उसके पैरों की आहट सुन दरवाजा खोलकर बरामदे में जो व्यक्ति आया, वह पुरुष नहीं स्त्री थी। अठारह-उन्नीस वर्ष की एक विवाहिता युवती। क्षण भर में लता ने यह देख लिया कि उसका रंग जरूर गोरा है, पर रूप नहीं, बिलकुल नहीं।

'कौन हैं? आप क्या चाहती हैं?'

'मैं जरा डाक्टर साहब से मिलना चाहती हूं। बहुत दूर से आयी हूँ।'

'डाक्टर साहब से अभी मुलाकात नहीं हो सकती।··· वे—वे यहाँ नहीं हैं। मैं उनकी पत्नी हूँ, जो कुछ कहना-सुनना हो मुझसे कह सकती हैं।'

उसकी आवाज में असीम धृष्टता और एक असहनीय स्पर्द्धा थी!

अकस्मात् एक तीव्र ईर्ष्या से लता जसे झुलस गयी। स्थान, काल और पात्र—वह सब कुछ भूलकर जैसे जोर से चीख उठी, 'उनकी पत्नी मैं हूँ—तुम नहीं। तुम्हारा विवाह कानूनन गलत है!'

'ओ, यह बात है,' उस युवती ने व्यंग के स्वर में मुंह बनाते हुए कहा, 'शहर की बाजारू औरत का बड़ा हौसला है! अपनी हैसियत न

भूलो—बौना होकर चाँद पकड़ने की कोशिश !'

फिर अपने हाथ नचाते और मुंह मटकाते हुए बोली, 'जाओ जाओ, यहाँ तुम्हारे इन सब चोचलों का कोई असर नहीं होगा। साधे से जाती हो या नौकर से धक्के देकर निकलवाऊँ ?····यदि हिम्मत हो तो अदालत में जाओ। अपना काला मुंह लेकर यहाँ क्या झख मारने आयी हो ? जानती हूं, अच्छी तरह से जानती हूँ—मुझे सब मालूम है। बेहया, बेशर्म यहाँ आते हुए तुझे शर्म नहीं आया ! चुपचाप चली जाओ, इसी में खैर है।'

यहाँ भी भीड़ इकट्ठी होने लगी। लता से अब खड़ा न रहा गया, प्राणदंड तो उसे पहले ही मिल चुका है, उस पर्दे के पीछे एक पुरुष की छाया से। अब और क्यों ? सच, यह उसकी धृष्टता ही है।

धीरे-धीरे कांपते हुए वह फिर किसी तरह बैलगाड़ी में बैठ गयी।

'कहाँ जाना होगा, बीबी जी ?'

'कहाँ जाऊँगी ?' लता हँसती है, फिर रूंधे हुए स्वर में अटकते हुए बोली, 'अभी तो भैया तुम नरसिंहपुर ही पहुँचा दो। उसके बाद का कुछ पता नहीं—'

काफी दूर पहुँच जाने के बाद एक आदमी तेजी से साइकिल चलाता हुआ पीछे-पीछे आया।

'सुनिये, जरा सुनिये ?'

लता चौंक पड़ी।

'क्या ? मुझसे कुछ कहना है ?'

'जी, एक चिट्ठी है।'

'मेरी चिट्ठी ? किसने दी ?'

'डाक्टर साहब ने।'

इस बार फिर ऐसा लगा जैसे दिल की धड़कन बन्द हो जायगी। हाथ में चिट्ठी लेकर भी उसको खोलने का साहस नहीं होता। आँखें बन्द कर सहारा लिये हुए वह बैठी रहती है।

तब तक साइकिल सवार चला गया था। गाड़ीवान ने पूछा, 'बीबी जी, तो क्या अब फिर गाड़ी वहाँ ले चलूं ?'

'नहीं भैया, तुम चलो जैसे चल रहे हो—'

अन्त में उसने पत्र खोला। लिफाफे में दस-दस के पांच नोट थे। और एक लाइन—'मुझे माफ करो।' कोई संभाषण नहीं, हस्ताक्षर भी नहीं। कानून से बचने के लिए इस सतर्कता का सहारा लिया गया है।

आँखों से अब आंसू नहीं निकलते। दीर्घश्वास भी नहीं। बल्कि कुछ हँसी ही आती है।

लता ने कागज के टुकड़े और नोटों को फाड़ना शुरू किया। उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर हवा में उड़ा दिये।

नरसिंहपुर के दूर-दूर तक फैले हुए खेत और मैदान में उस समय चारों ओर गहरा अंधकार छा रहा था।